इकाई 1 वैदिक संहितायें– ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता, अथर्ववेद संहिता

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- 'वेद' के स्वरूप को समझने में समर्थ होंगे।
- वैदिक संहिताओं (ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता) का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- चतुर्विध संहिताओं की उपलब्ध शाखाओं से परिचित हो सकेंगे।
- चतुर्विध संहिताओं के भाष्यकारों का भी परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय में 'संस्कृत वाङ्मय' तथा 'संस्कृत वाङ्मय' में 'वैदिक वाङ्मय' का महत्त्व सर्वातिशायी है। 'वाक्' को ही सम्पूर्ण सृष्टि कहा जाता है। उसमें जो संस्कृत वाक् है वही प्रशस्य है–**'संस्कृतं नाम दैवी वाक् अन्वाख्याता महर्षिभिः।'** संस्कृत वाक् के दो प्रकार हैं– वैदिक तथा लौकिक। इनमें से महर्षि वाल्मीकि से अद्यावधि व्याप्त समग्र (लौकिक) वाग्वितान् का मूल वैदिक वाक् ही है जैसा कि महर्षि वेदव्यास ने कहा है–

अनादिनिधना नित्या वागुत्स्रष्टा स्वयंभुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।

भारतीय परम्परानुसार वैदिक वाक् (वेद) ही लोक, भारतीय आर्य संस्कृति और धर्म का मूल है क्योंकि इसमें ही इहलोक तथा परलोक का समग्रज्ञान भण्डार निहित है। मानव धर्म के विवेक का यही सनातन चक्षु है–**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्, सर्वज्ञानमयो हि सः।।** (मनु. 2/7)

वैदिक वाक् (वाङ्मय) के अन्तर्गत वेद तथा वेदों से सम्बद्ध बहुविध शाब्दिकाभिव्यक्ति रूप ज्ञानराशि समाहित है। जिसके मूलतः चार सोपान हैं– 1. वेद (मन्त्र/संहिता) 2. ब्राह्मण, 3. आरण्यक, 4. उपनिषद्। इनके अतिरिक्त सूत्रग्रन्थ तथा षड् वेदाङ्ग भी वैदिक वाङ्मय में परिगणित होते हैं किन्तु ब्राह्मणों से वेदाङ्ग तक समग्र ग्रन्थराशि मूलतः वेदों के ही गहनार्थ को प्रकाशित करती है। अतः वैदिक वाङ्मय का मूल स्तम्भ वेद अर्थात् वैदिक संहितायें ही हैं। प्रस्तुत इकाई में आप वैदिक वाङ्मय के आधारस्तम्भ इन्हीं वेदों का परिचय प्राप्त करेंगे।

1.2 वैदिक पृष्ठभूमि

विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय 'वेद' नाम से जाना जाता है। मानव सभ्यता के आरम्भ में वेदमन्त्रों का प्रथम दर्शन करने वाले साक्षात्कृत्धर्मा तपःपूत वैदिक ऋषियों ने ब्रह्माण्ड में व्याप्त विविध तत्त्वों के अन्तस् में निगूहित जिस ईश्वरीय ज्ञान का साक्षात्कार करके उसे मन्त्रों के रूप में अभिव्यक्त किया वे (मन्त्र) ही ज्ञानराशिसम्पन्न होने से 'वेद' कहलाये।

क) **'वेद' शब्द का अर्थ** – प्राचीनतम वाङ्मय के लिये वेद शब्द का अभिधान अत्यन्त प्राचीनकाल से होता आ रहा है। 'वेद' शब्द 'विद्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है– 'पवित्रज्ञान'। 'विद्' धातु चार अर्थों में प्रयुक्त होती है– ज्ञान, लाभ, सत्ता और विचारणा। भारतीय परम्परा में विद् धातु से निष्पन्न 'वेद' शब्द प्रधानतः ज्ञान का वाचक है किन्तु आचार्यों ने 'वेद' शब्द के निर्वचन में उक्त चारों अर्थों को समाहित करने का प्रयास किया है। आचार्य विष्णुमित्र के अनुसार, **''विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मार्थपुरुषार्थ इति वेदाः।''** (ऋक्प्रातिशाख्य-वर्गद्वयवृत्ति) अर्थात् धर्मार्थकाममोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थों का ज्ञान या प्राप्ति जिसके द्वारा होती है, वह 'वेद' है।

महर्षि दयानन्द ने भी लिखा है–विदन्ति = जानन्ति, विद्यन्ते = भवन्ति, विन्दन्ति अथवा विन्दन्ते = लभ्यन्ते, विन्दन्ते = विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्याः यैः येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः। (सत्यार्थप्रकाश)

सायण ने 'वेद' को इष्टप्राप्ति तथा अनिष्टपरिहार का अलौकिक उपाय बताया है–**''इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेदः।''** (ऋ.वे.भा. भू.) उनके अनुसार– वेदों का वेदत्व इसी में है कि प्रत्यक्षानुमानादि प्रमाणों से भी जिन अलौकिक विषयों (स्वर्ग परलोक ब्रह्म धर्मादि) का ज्ञान नहीं हो पाता। उन अलौकिक विषयों का ज्ञान कराने में समर्थ एकमात्र प्रमाण 'वेद' ही है।

'वेद' में स्वरों का अत्यन्त महत्त्व है। स्वर परिवर्तन होने से अर्थ भी परिवर्तित हो जाता है। अतः स्वर की दृष्टि से ज्ञानार्थक वेद शब्द आद्युदात्त है जबकि अन्त्योदात्तवेद शब्द कुशमुष्टि का पर्याय है। 'वेद' को गुरुशिष्य परम्परा में

श्रुतिपरम्परा से अध्ययन किये जाने के कारण 'श्रुति', गुरुमुख से यथाश्रुत अभ्यास किये जाने से 'आम्नाय', ऋक्, यजुष्, सामन् त्रिस्वरूपात्मक होने से 'त्रयी', मन्त्रात्मक होने से 'छन्दस्', सभी द्विजों के लिये अध्ययन का एकमात्र विषय होने से 'स्वाध्याय' तथा धर्म का मूल होने से इसे 'आगम' भी कहते हैं।

ख) वेद का स्वरूप – वैदिक वाङ्मय में 'वेद' के स्वरूप के विषय में दो मान्यतायें प्रचलित हैं–

1. बोधायन तथा आपस्तम्ब के इन वचनों '**मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्यचक्षते**' (बो. गृ. सू. 2-6-2) तथा '**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**' (आप.यज्ञपरिभाषा 1-3-3-1) के अनुसार वेद मन्त्रब्राह्मणात्मक शब्दराशि हैं अर्थात् इन दोनों (मन्त्र तथा ब्राह्मण) की संयुक्तसंज्ञा ही 'वेद' है। वेदभाष्यकारों का भी प्रायः यही मत है। यहाँ 'मन्त्र' पद से संहिता भाग तथा 'ब्राह्मण' पद से ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् संग्रहीत होते हैं।

2. दूसरी विचारधारा के अनुसार वेद मन्त्रात्मक संहिता है अर्थात् संहिता को ही वेद कहते हैं।

परम्परा में 'वेद' शब्द मन्त्र, संहिता तथा ब्राह्मण तीनों के लिये ही प्रयुक्त दृष्टिगत होता है –

1. **मन्त्रों का वेदत्व** –'**मननात् मन्त्रः**' (निरुक्त) जिसके द्वारा यज्ञयागों का अनुष्ठान निष्पन्न होता है तथा उनमें वर्णित देवताओं का स्तुति विधान किया जाता है, उन्हें मन्त्र कहते हैं। 'मन्त्र' शब्द 'मन्' धातु से बना है जिसका तात्पर्य है– गुप्त कथन या शब्दात्मक अभिव्यक्ति। शब्दसमूहरूप मन्त्रों की अभिव्यक्ति के तीन प्रकार हैं– पद्यात्मक, गद्यात्मक तथा गानात्मक। इन्हें ही वैदिक शब्दावली में ऋक्, यजुष् तथा सामन् कहते हैं। इस प्रकार आरम्भ में वेद का स्वरूप त्रिविध मन्त्रात्मक था, जिसे त्रयी (वेदत्रयी) कहा गया। उव्वट का भी कथन है–**'सर्वकालं सर्वदेशेषु प्रतिचरणमविभागेनैको मन्त्रराशिर्वेद उच्यते।'** (हि. ए. सं. लि. पृ. 121)

2. **संहिताओ का वेदत्व** – वैदिकमन्त्रों के समूह या सङ्कलन का नाम 'संहिता' है। ये संहितायें चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। चूंकि इन संहिताओं में पद्य, गद्य तथा गानात्मक मन्त्र थे, अतः त्रिविध मन्त्रों के लिये प्रयुक्त 'वेद' शब्द इन चारों संहिताओं का भी वाचक बना।

3. **ब्राह्मणों का वेदत्व** – सभी सूत्रग्रन्थों तथा परवर्ती भाष्यकारों ने ब्राह्मण ग्रन्थों का भी वेदत्व स्वीकार किया है। इसका कारण यह है कि वैदिक साहित्य में यज्ञ सर्वोपरि है। मन्त्र और ब्राह्मण दोनों यज्ञविधा से सम्बद्ध हैं। मन्त्र तो कर्मानुष्ठान के स्मारक रूप में प्रयुक्त होते थे। अतः उनका वेदत्व तो सिद्ध था ही, साथ में ब्राह्मणों में जिस विधि तथा अर्थवाद का विवेचन हुआ, वह भी यज्ञविधा का एक मुख्यरूप था इसलिये यज्ञविद्या के दो भाग हुए– मन्त्र तथा विधि। ये विधियाँ ब्राह्मणों में ही थीं, मन्त्रों में नहीं। अतः दोनों (मन्त्र तथा ब्राह्मण) की संयुक्त संज्ञा प्रचलित हुई– वेद।

वस्तुतः ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् ग्रन्थ वैदिक मन्त्र संहिताओं की ही कर्मकाण्डीय तथा ज्ञानकाण्डीय व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। अतः 'वेद' शब्द प्रधानतः वैदिक मन्त्रों के लिये ही प्रयुक्त होता है जैसा कि सायण का भी वचन है–

"यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानस्वरूपत्वात् मन्त्र एवादौ समाम्नातः" (तै.सं.भा.भू)

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मन्त्र संहिताओं के वेदत्व के सम्बन्ध में तर्क दिया है कि केवल संहिता भाग ही वेद है क्योंकि वह ऋषिदृष्ट है, ब्राह्मण ऋषिदृष्ट नहीं वे तो संहिताओं के भाष्यमात्र हैं। भाष्य या व्याख्या ग्रन्थ को वेद नहीं माना जा सकता (ऋ. वे.भा.भू. वेदसंज्ञाविचार) इस प्रकार मन्त्र संहिता ही मूलतः 'वेद' है।

1.3 वेदों का कालनिर्धारण

यद्यपि वेदों की अपौरुषेयता ही कालनिर्धारण की सम्भावना का निराकरण कर देती है, तथापि कुछ विद्वान् **नमः ऋषिभ्यो मन्त्रकृतो मनीषिणः** (तै.ब्रा. 4-1-1),**यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिणः** (तै.ब्रा. 2-7-7) इत्यादि वक्तव्यों के आधार पर ऋषियों को मन्त्रसृष्टा मानते हुये वेदों का कालनिर्धारण करते हैं। इस विषय में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों में मतभेद है।

क) भारतीय विद्वानों का मत – भारतीय विद्वानों ने वेद तथा ब्राह्मणों में प्राप्त ऋतु तथा नक्षत्र निर्देशों के आधार पर ज्योतिषीय गणना करके वेदों के कालनिर्धारण का प्रयास किया है। इनमें प्रमुख आचार्यों के मत द्रष्टव्य हैं –

1) बालगंगाधर तिलक – बालगंगाधर तिलक ने बसन्तसम्पात को आधार मानते हुए वेदों का रचनाकाल 6000 ई.पू. से 4000 ई.पू. माना है। वेदों के कालनिर्धारण हेतु उन्होंने वैदिक काल को चार भागों में विभक्त किया है –

1. अदिति काल – (6000ई.पू. से 4000 ई.पू.) निविद् मन्त्रों की रचना इस काल में हुई।
2. मृगशिरा काल – (4000 ई.पू. से 2500 ई.पू) ऋग्वेद के अधिकांश मन्त्र इसी काल में रचे गये।
3. कृत्तिका काल – (2500 ई.पू. से 1400 ई.पू.) चारों संहिताओं का संकलन, कुछ ब्राह्मण ग्रन्थों तथा वेदांग ज्योतिष का प्रणयन इसी युग में किया गया।
4. अन्तिम काल – (1400 ई.पू से 500 ई.पू.) गृह्यसूत्रों तथा दर्शनसूत्रों की रचना इसी युग में हुई।

तिलक के अनुसार ऋतुओं का आगमन सूर्यसंक्रान्ति पर आश्रित है। ऋतुयें निरन्तर पीछे हट रही हैं जो पहले वर्ष का आरम्भ बसन्त से होता था तथा बसन्तसम्पात क्रमशः उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा आदि नक्षत्रों से होता था अब उसका आरम्भ मीनराशि की संक्रान्ति तथा पूर्वाभाद्रपदनक्षत्र के चतुर्थ चरण से होता है। सूर्य का संक्रमणवृत्त 360 डिग्री का है। अतः 27 नक्षत्रों में से प्रत्येक नक्षत्र को एक डिग्री पीछे हटने में 72 वर्षों का समय तथा 13 डिग्री पीछे हटने में 72×13 = 972 वर्ष लगते हैं। अतः 1500 वर्ष पूर्व कृत्तिका में वसन्तसम्पात हुआ होगा। तिलक का कहना है कि ऋग्वेद में कुछ ऐसे मन्त्र हैं जिनसे मृगशिरा में वसन्तसम्पात का संकेत मिलता है जो कि पुनर्वसु नक्षत्र तक जाता है। मृगशिरा में बसन्तसम्पात का समय कृत्तिका वाले समय से 972×2 = 1944 वर्ष पूर्व होगा। फलतः मृगशिरा में बसन्तसम्पात होने का समय 4444 ई.पू. है। इसका निष्कर्ष है कि वेदों की रचना लगभग 4500 ई.पू. अर्थात् आज से लगभग 6500 ई.पू. हुई होगी।

2) **शंकर बालकृष्ण दीक्षित का मत** – आचार्य बालकृष्णदीक्षित ने शतपथब्राह्मण (2-12) में कृत्तिकानक्षत्र के पूर्वीय बिन्दु से उदय के आधार पर वेदों का रचनाकाल 3500 ई.पू. माना है। उनके अनुसार शतपथब्राह्मण की रचना के समय कृत्तिकाओं का उदय ठीक पूर्वीय बिन्दु पर होता था तथा कृत्तिका नक्षत्र अपने स्थान से 4-3/4 नक्षत्र पीछे हट चुका था अतः कृत्तिका नक्षत्र में बसन्तसम्पात सम्भवतः 2500 ई.पू. निर्धारित होता है।

3) **अविनाश चन्द्र दास** – डॉ. अविनाशचन्द्रदास ने भूगर्भशास्त्र तथा भौगोलिक साक्ष्यों के आधार पर ऋग्वेद का रचनाकाल ईसा से 25000 वर्ष पूर्व माना है।

ख) **पाश्चात्य विद्वानों का मत** – वेदों के काल निर्धारण के सम्बन्ध में पश्चात्याचार्यों में मैक्समूलर, याकोबी, विन्टरनित्स तथा मैक्डोनल के मत उल्लेखनीय है–

1) **मैक्समूलर**– जर्मन विद्वान् मैक्समूलर ने History of Ancient Sanskrit literature में वेदों के कालनिर्धारण करने का सर्वप्रथम प्रयास किया। उन्होंने महात्मा बुद्ध के आविर्भाव को आधार मानकर वैदिक संहिता तथा उनके रचना काल को चार विभागों में बाँटा –

1. छन्दः काल –1200 ई.पू. से 1000 ई.पू.
2. मन्त्रकाल –1000 ई.पू. से 800 ई.पू.
3. ब्राह्मणकाल –800 ई.पू. 600 ई.पू.
4. सूत्रकाल –600ई.पू. से 400 ई.पू.

मैक्समूलर ने छन्दःकाल को प्रचीनतम मानते हुए ऋग्वेद का रचनाकाल 1200 ई. पू. से 1000 ई.पू. निर्धारित किया किन्तु कालान्तर में मैक्समूलर ने ही अपने इस मत को अमान्य कर दिया। बोघाजकोई से शिलालेख के प्राप्त होने के उपरान्त उनका मत पूर्णतः निरस्त हो गया।

2) **विन्टरनित्स** – जर्मनी के ही प्राच्यविद्याविशारद विन्टरनित्स ने वेदों का रचनाकाल 2500 ई.पू. से 2000 ई.पू. माना है किन्तु वे स्वयं इस समयसीमा के विषय में निर्भ्रान्त नहीं हैं।

3) **याकोबी** – जर्मनी के ही प्रसिद्ध इतिहासविद् तथा ज्योतिर्विद याकोबी ने वेदों के कालनिर्धारण के विषय में अपना मौलिक दृष्टिकोण दिया है। उन्होंने कल्पसूत्र के विवाह प्रकरण में उल्लिखित इस वाक्य **"ध्रुवा इव स्थिरा भव"** के आधार पर ज्योतिर्विज्ञान के माध्यम से ध्रुवनक्षत्र की गणना द्वारा वेदों का रचनाकाल 4500 ई.पू. 2500 ई.पू. तक निर्धारित किया है।

4) **मैक्डोनल** – मैक्डोनल ने अपने ग्रन्थ History of Sanskrit literature में वेदरचना के प्रारम्भिक कालनिर्णय के लिये विविध पाठान्तरों को आधार बनाकर वेदों का रचनाकाल 1000 ई.पू. से 600 ई.पू. तक निर्धारित किया है।

1.4 वैदिक संहिताओं का परिचय

महर्षि वेदव्यास के द्वारा वेद की जिन चार संहिताओं (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) का निर्माण किया गया, उनके पौर्वापर्य के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

विष्णुपुराण तथा वैदिकभाष्यकार सायण ने यजुर्वेद को सर्वोपरि माना है किन्तु पौराणिक परम्परा व्यास के द्वारा अपने शिष्यों के वेदाध्यापन का जिस क्रम में उल्लेख करती है, तदनुसार संहिताओं का क्रम है– ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता। पुराणों में कहा गया है कि महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने क्रमशः पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद तथा सुमन्तु को अथर्ववेद का उपदेश किया था। अथर्ववेद संहिता तथा उपनिषद् भी वैदिक संहिताओं के इसी क्रम का समर्थन करते हैं। इन चतुर्विध संहिताओं का परिचय क्रमशः इस प्रकार है –

1.4.1 ऋग्वेद संहिता

वैदिक वाङ्मय में ऋक् संहिता का पाठ सर्वप्रथम विहित है। तैत्तिरीय संहिता में यज्ञानुष्ठानों में यजुष् तथा साम से किये गये विधान की अपेक्षा ऋचाओं से किये गये विधानों को सुदृढ बताकर ऋक् संहिता को सर्वाधिक महत्त्वशाली बताया गया है– **'यद् वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद् यद् ऋचा तद्दृढम्।'** (तै. सं. 65-103)।

'ऋचां समूहः ऋग्वेदः' ऋचाओं का समूह ही ऋग्वेद है। 'ऋचा' शब्द **'ऋच् स्तुतौ'** धातु में क्विप् प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है– स्तुति। **ऋच्यते स्तूयते यया सा ऋक्** अर्थात् ऐसे मन्त्र, जिनमें देवताओं की स्तुतियाँ हों, ऋक् या ऋचा कहलाते हैं।

ऋग्वेद में वेद के त्रिस्वरूपात्मक मन्त्रों में से केवल छन्दोबद्ध (पद्यात्मक) मन्त्रों का ही संकलन है जैसा कि जैमिनि का वचन है – अर्थानुरूप पादव्यवस्था वाले छन्दोबद्ध मन्त्र ही ऋक् (ऋचा) कहलाते हैं – **तेषामृक्यत्रार्थवशेनपादव्यवस्था।** (जै.मी. सू. 2-1-35)

वेदभाष्यकार सायण ने ऋक् शब्द की व्युत्पत्ति अर्च् धातु से मानी है उनके अनुसार– देवता क्रिया या यागगतसाधनविशेष की प्रशंसा करने के कारण इन्हें ऋक् या ऋचा कहा गया है।

1) **ऋग्वेद का विभाग क्रम** – ऋग्वेद संहिता का विभाजन दो रूपों में प्राप्त होता है– (1) मण्डलक्रम विभाग (2) अष्टकक्रम विभाग। सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता में (बालखिल्य सूक्तों को छोड़कर) 10 मण्डल, 85 अनुवाक् तथा 2006 वर्ग हैं। अष्टक क्रमानुसार– ऋग्वेद में 8 अष्टक, 64 अध्याय, 1017 सूक्त है। इस क्रम में प्रति अष्टक 8 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय वर्गों में विभाजित किया गया है। वर्गों में अनिश्चित संख्या में ऋचायें हैं। मण्डल क्रमानुसार भी ऋग्वेद संहिता में कुल 1017 सूक्त हैं। इन सूक्तों के अतिरिक्त परिशिष्ट रूप में 11 सूक्त बालखिल्य नाम से प्रसिद्ध है। खिल का अभिप्राय है परिशष्टरूप में संकलित मन्त्र। अधुना ऐतिहासिक आधार के कारण मण्डलक्रम विद्वानों में अधिक लोकप्रिय है।

   शौनक-अनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद संहिता में (खिलसूक्त मन्त्र सहित) 10580 मन्त्र हैं–

   ऋच्वां दश सहस्त्राणि ऋचां पञ्च शतानि च।
   ऋचामशीतिः पादश्च पारणं संप्रकीर्तितम्।। अनुवाकानुक्रमणी –43

ऋग्वेद के मन्त्रों की संख्या के सम्बन्ध में विद्वानों के मतों में वैषम्य है। कात्यायन ने ऋग्वेद के मन्त्रों की संख्या 10552, नारायणभट्ट ने (अष्टकक्रमानुसार)10472 तथा खिलसूक्तों सहित मन्त्र संख्या 10552 मानी है। इस संख्याभेद का कारण यह है कि ऋग्वेद में कुछ ऋचायें ऐसी हैं जो अध्ययन काल में चतुष्पदा किन्तु प्रयोगकाल में द्विपदा हो जाती हैं। इन्हें नैमित्तिक द्विपदा ऋचायें कहते हैं। कुछ ऋचायें नित्य द्विपदा भी हैं।

2) **ऋग्वेद के मन्त्रदृष्टा ऋषि (वंशमण्डल) – ऋषति पश्यति इति ऋषिः। 'ऋषिर्दर्शनात्'** अर्थात् वेदमन्त्रों का प्रथम दर्शन करने वाले सिद्ध पुरुष ऋषि हैं। निरुक्तकार ने **'साक्षात्कृतधर्माणो ऋषयः'** (नि. 2-11) कहकर वैदिक ऋषियों के दो प्रकार बतायें हैं प्रथम वे, जिन्होंने अपने तपोबल से मन्त्रों का साक्षात्कार किया द्वितीय वो, जो स्वयं मन्त्रों के साक्षात्कर्ता न होकर उपदेष्टा मात्र थे।

ऋग्वेद के मण्डलों का विभाजन प्रायः ऋषियों की दृष्टि से किया गया है। महर्षि कात्यायन ने ऋग्वैदिक ऋषियों की तीन श्रेणियाँ विभाजित की हैं– 1) शतर्चिन, (2) माध्यम, (3) क्षुद्रसूक्त महासूक्त।

इनमें शतर्चिन ऋषि वे मन्त्रदृष्टा ऋषि हैं जिन्होंने सूक्तों में सौ से अधिक या कम मन्त्रों का संकलन किया है। इन ऋषियों का सम्बन्ध ऋग्वेद के प्रथम मण्डल से है। कात्यायन ने इन ऋषियों की संख्या 16 बताई है– मधुच्छन्दा, मेघातिथि, शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, कण्व, प्रस्कण्व सव्य, नोधा, पराशर गोतम, कुत्स, काश्यप, कक्षीवान् पुरुच्छेद, दीर्घतमा तथा अगस्त्य।

द्वितीय मण्डल से अष्टम मण्डल तक जो मन्त्र हैं, वे जिन ऋषियों के द्वारा दृष्ट हुए, उन्हें माध्यम कहा गया। इन मण्डलों को वंश या गोत्रमण्डल भी कहा जाता है क्योंकि इसमें समाविष्ट मन्त्रों का साक्षात्कार किसी एक ही ऋषि या उसके वंशजों ने किया है। द्वितीय मण्डल से अष्टम मण्डल तक के मन्त्र दृष्टा ऋषि क्रमशः गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज, वसिष्ठ, कण्व तथा उनके वंशज हैं।

ऋग्वेद के नवम मण्डल के अनेक ऋषि हैं। इस मण्डल को सोम की स्तुति में समर्पित होने के कारण 'पवमान मण्डल' भी कहते हैं दशम मण्डल में कुछ सूक्तों में अत्यल्प तथा कुछ में अत्यधिक मन्त्र हैं। अतः इनके मन्त्र दृष्टा ऋषियों को 'क्षुद्रमहासूक्ताः' कहा गया है।

ऋग्वेद के सब ऋषि ब्राह्मण थे, परन्तु दशम मण्डल के विषय में ऐसी भी मान्यता है कि दशम मण्डल के अन्तर्गत कुछ ऋषि ब्राह्मणेतर भी थे।

3) **ऋग्वेद में स्तुत्य देवता** – ऋग्वेद के मन्त्रों में विविध देवताओं का भावभंगिमापूर्वक स्तवन किया गया है। 'देव' शब्द दिव् धातु से निष्पन्न होता है जिसका तात्पर्य है– प्रकाशित होना। निरुक्तकार ने भी लिखा है–**'देवो दानात् द्योतनाद् दीपनाद् वा'** (निरु.दै.का. 1-5) लोक में भ्रमण करने वाले, प्रकाशित होने वाले या भोज्यादि सारे पदार्थ देने वाले को देवता कहा है। यास्क के अनुसार– देवता तीन प्रकार के हैं– (1) पृथिवीस्थानीय (यथा–अग्नि) (2) अन्तरिक्षस्थानीय (यथा–इन्द्र, वायु) (3) द्युस्थानीय (यथा–सूर्य) (निरु. 4-7)। ऋग्वेद के मन्त्रों में इन्हीं त्रिविध देवताओं की नामान्तरों से स्तुतियाँ की गयी हैं।

वैदिक ऋषियों ने जिन प्राकृत शक्तियों की स्तुति ऋग्वेद में की है वह उनके स्थूल स्वरूप की नहीं, अपितु उनकी अधिष्ठात्री चेतनशक्ति की है। वैदिक देवता वस्तुतः प्रकृति की ही विविध शक्तियों का दैवीकरण है। ऋग्वेद में प्रकृति के कण-कण में विद्यमान प्रत्येक उस शक्ति का देवतारूप में स्तवन किया गया है। जैसा कि ऋग्वेद का वचन है– **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।'** (ऋ.वे. 1/64/46) निरुक्त में भी कहा गया है– **'महाभाग्याद् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।'**(निरु.दै.का. 7)।

ऋग्वेद (1/139/11) में 33 देवताओं का उल्लेख किया गया है। इनमें 11 पृथिवीस्थानीय, 11 अन्तरिक्षस्थानीय तथा 11 द्युस्थानीय हैं। ऋग्वेद में दो स्थानों (3-9-9 तथा 10-52-6) में 3339 देवताओं का कथन भी किया गया है। सायण ने इनमें समन्वय करते हुए लिखा है कि देवता तो 33 ही हैं परन्तु देवताओं की विशाल महिमा बताने के लिये अन्यत्र 3339 देवों का भी उल्लेख किया गया है।

ऋग्वेदीय देवताओं में तीन देवता अपने वैशिष्ट्य के कारण नितान्त प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रथम स्थान इन्द्र, द्वितीय स्थान अग्नि तथा तृतीय स्थान वरुण का है। इन्द्र वैदिक आर्यों का राष्ट्रिय देवता है। वह विजयप्रदाता देवता होने के कारण सबसे अधिक ओजस्वी तथा वीररस मण्डित मन्त्रों के द्वारा संस्तुत है। ऋग्वेदीय देवताओं में इन्द्र का महत्त्व इसी से प्रमाणित हो जाता है कि ऋग्वेद के लगभग 258 सूक्तों में इन्द्र का ही स्तवन किया गया है जबकि याज्ञिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने से अग्नि का द्वितीय स्थान है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त का आरम्भ ही अग्नि की स्तुति से होता है। यही नहीं, सम्पूर्ण ऋग्वेद में लगभग 200 सूक्त अग्नि की स्तुति में ही समर्पित है। इसी प्रकार ऋग्वेद में वरुण देवता का अनेक सूक्तों में स्तवन किया गया है, वहाँ उन्हें प्राणिमात्र की भावनाओं को जानने वाले तथा दण्ड और न्याय के देवता के रूप में चित्रित किया गया है। देवियों में 'उषा' का स्थान सर्वोपरि है। इनके अतिरिक्त अन्य देवताओं में मित्रावरुण, वायु, अश्विनी कुमार, विश्वेदेवा, मरुत्, त्वष्टा, बृहस्पति, सविता, द्यावापृथिवी, विष्णु, सूर्य, उषा, रुद्र, अर्यमा, आदित्य, पूषा, विवस्वान्, पर्जन्य, अपांनपात्, मातरिश्वा इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

4) **ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्द** – ऋग्वेद में ऋक् (ऋचा) का अभिप्राय छन्दोबद्ध मन्त्रों से है। छन्द वह है जो मनुष्यों का प्रसन्नता प्रदान करे, यज्ञादि की रक्षा करे। (निरु. दैवतकाण्ड 1-12)। शौनक की छन्दोनुक्रमणी में ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों की संख्या 19 बतलाई गयी है। ये वैदिक छन्द हैं– गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, अतिधृति, एकपदा, द्विपदा, प्रगाथबार्हत, काकुभ, महाबार्हत। इसमें से ऋग्वेद में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाले छन्दों में प्रथम स्थान त्रिष्टुप् का तथा द्वितीय स्थान गायत्री छन्द का है।

5) **ऋग्वेद के ऋत्विज्** – वैदिक संहिताओं में से ऋग्वेद संहिता का ऋत्विज् है– 'होता'। इसका कार्य देवताओं की स्तुतिपरक ऋचाओं को एकत्रित करके विविध यज्ञों में उनका शंसन करना है। 'होता' नामक ऋत्विज् के तीन अन्य सहायक होते थे– मैत्रावरुण (प्रशास्ता), अच्छावाक् और ग्रावस्तुत्। इन चारों को संयुक्तरूप से 'होतृगण' या 'होतृमण्डल' कहा जाता था। होता के निमित्त ऋचाओं का 'ऋग्वेद' में संकलन होने से इसे 'होतृवेद' भी कहा जाता है।

6) **ऋग्वेद की शाखायें** – वैदिक संहिताओं पर गम्भीर मनन-चिन्तन के पश्चात् कालान्तर में विविध ऋषि सम्प्रदायों के द्वारा मन्त्रों का पौर्वापर्य, न्यूनाधिक्य, उच्चारण तथा अनुष्ठान विधियों में जो भेद किया गया उनकी जो परम्परायें विकसित हुईं उन्हें शाखायें कहते हैं।

पातञ्जल महाभाष्य में ऋग्वेद की 21 शाखाओं का निर्देश किया गया है–**'एकविंशतधाबाह्वृच्यम्'**(महा.पश्पशा.)। इनमें से ऋग्वेद की प्रमुख पाँच शाखायें थीं– शाकल, वाष्कल, आश्वलायनी, शांखायनी, तथा मण्डूकायनी।

सम्प्रति ऋग्वेद की केवल एक ही शाखा उपलब्ध है–शाकलशाखा। इस शाखा में प्रत्येक सूक्त पर उसके ऋषि, देवता, छन्द तथा विनियोग का उल्लेख है ऐसी प्रसिद्धि है कि इस शाखा में अन्य शाखाओं में जो अधिक मन्त्र थे (विशेषतः बाष्कल शाखा में), वे भी सम्मिलित हैं। इसमें अष्टम मण्डल के बहुत से मन्त्रों को खिलों के अन्तर्गत रखा गया है।

7) **ऋग्वेद का वर्ण्य-विषय** – ऋग्वेद के मन्त्रों में ऋषियों ने अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये विविध देवताओं की अतीव सुन्दर तथा भावाभिव्यञ्जक स्तुतियाँ की हैं। अतः ऋग्वेद का प्रतिपाद्य विषय मूलतः देवस्तुतियाँ ही हैं, किन्तु इसके अतिरिक्त इसमें प्रत्येक मण्डल का अपना वैशिष्ट्य भी है, यथा– ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल से सप्तम मण्डल तक एक ही विशिष्टकुल के ऋषियों की प्रार्थनायें संग्रहीत हैं। इनमें विविध देवताओं से सम्बद्ध मन्त्रों का संकलन है। नवम मण्डल का नाम **'पवमान मण्डल'** है। इसमें यज्ञ के अवसर पर सोमरस की आहुति के समय प्रयुक्त मन्त्रों का संग्रह हैं। ऋग्वेद के प्रथम तथा दशम मण्डल सम्भवतः अन्य मण्डलों से अर्वाचीन है। इनमें दोनों ही मण्डलों में सूक्तों की संख्या समान (191) है, जो स्वयं में विशिष्ट है।

ऋग्वेद की ऋचाओं में न केवल वैदिक ऋषियों की देवताओं के प्रति अगाध श्रद्धा तथा समर्पण भाव दृष्टिगोचर होता है, अपितु उनके दार्शनिक, आध्यात्मिक कलात्मक पक्ष सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर भी प्रकाश पड़ता है। इस दृष्टि से ऋग्वेद का दशम मण्डल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद के इस मण्डल में एक ओर दार्शनिक सूक्तों (हिरण्यगर्भ-पुरुष सूक्तादि) में, जहाँ सृष्टि-प्रलय, लोक-परलोक, पुनर्जन्म जैसे गम्भीर दार्शनिक विषयों का निरूपण किया गया है। वहीं दूसरी ओर मानव व्यक्तित्व की दुर्बलताओं, महानता तथा संवेदनात्मक पक्षों को भी चित्रित किया गया है, उदाहरण के लिये– ऋग्वेद के दशम मण्डल के अक्षसूक्त (2-34) में, जहाँ द्यूतपट्ट पर फेंके गये पासों को देखकर उन्मत्त होने वाले एक जुआरी के मानसिक संताप का वर्णन कर संतोषरूप धन से उस दुर्बलता को दूर करने का सन्देश दिया गया है। इसी प्रकार संवाद सूक्तों के अन्तर्गत पुरुरवा-उर्वशी संवाद में प्रणय प्रसंग की त्रासदी में जहाँ मानवीय संवेदना को दर्शाया गया है वहीं यम-यमी संवाद में उच्छ्रंखलवासना पर यम के दृढ़ चरित्र की विजय को प्रदर्शित किया गया है। यही नहीं, एक ओर सरमा-पणि संवाद में दस्युओं की समाज विरोधी गतिविधियाँ और पणियों की स्वार्थपरता का चित्रण किया गया है, तो वहीं दानस्तुतियों में निःस्वार्थ दान के महत्त्व तथा ऋग्वेद (दशम मण्डल) के अन्तिम सूक्त (संज्ञान सूक्त) में 'सङ्गच्छध्वं संवदध्वम्' की उदात्त भावनाओं का मंगलमय संदेश दिया गया है।

8) **ऋग्वेद के महत्त्वपूर्ण सूक्त** – ऋग्वेद में दार्शनिक तथा सामाजिक महत्त्व के अनेक सूक्त हैं जिनका अपना स्वतन्त्र महत्त्व है। ये सूक्त इस प्रकार हैं–

दार्शनिक महत्त्व के सूक्त –

1) **नासदीय सूक्त (10/129)** – इस सूक्त में सृष्टि की आदिम अवस्था वर्णित है। इसमें मूल सत्ता को सत्-असत् से परे कहा गया है। उस समय रात-दिन का कोई भेद नहीं था। केवल एक (तत्त्व) था जो अपनी शक्ति से प्राणवायु के बिना भी श्वास ले रहा था। इसके अलावा सृष्टि का कोई भी चिह्न नहीं था। इसी एक तत्त्व में 'काम' रूप मन का विकार हुआ। ऋषियों ने इसी कामरूपादि तत्त्व में जगत् का मूल माना। यह सूक्त 'नासत्' पद से आरम्भ होने के कारण 'नासदीय सूक्त' कहलाया।

2) **हिरण्यगर्भ सूक्त (10/121)** – इसे 'प्रजापति सूक्त' भी कहते हैं। इसमें वैदिक ऋषियों ने बहुदेववाद की समस्या का समाधान करके हिरण्यगर्भ (प्रजापति) रूप एक देव की कल्पना कर उसे सृष्टि का मूल माना है। इस सूक्त में वैदिक ऋषि श्रद्धा से अभिभूत होकर प्रश्न उपस्थित करता है– **'कस्मै देवाय हविषा विधेम।'** यहाँ 'कः' पद प्रजापति का ही द्योतक है जो सृष्टि की कामना करता है, वह है– 'कः'। प्रजापति ने सृष्टि की कामना की अतएव वह भी 'कः' है। इस सूक्त में कहा गया है कि जगत् के विकास क्रम में हिरण्यगर्भ ही सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ था। उसी से सृष्टिक्रम आगे बढा।

3) **पुरुष सूक्त (10/190)** – इस सूक्त में सृष्टि का मूल सहस्रशिर आँखों तथा चरणों वाले पुरुष को बताया गया है तथा भूत-वर्तमान-भविष्य में शाश्वत इसी पुरुष तत्त्व से सर्वप्रथम विराट तदनन्तर जीवात्मा पुनः देव, मनुष्य (ब्राह्मणादि), तिर्यगादि, चतुर्वेदादि तथा समस्त चराचर जगत् की सृष्टि हुई। यह सूक्त विविध प्राचीन आध्यात्मिक तथा सामाजिक अवधारणाओं का स्रोत होने से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अद्वैतवेदान्त के **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** का स्रोत इसी सूक्त में विद्यमान है।

4) **वागम्भृणी सूक्त (10/125)** – इस सूक्त में शब्दब्रह्म को व्यक्त करने वाली 'वाक्' को परब्रह्मस्वरूप माना गया है, जिससे नामरूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है। यह 'वाक्' परमात्मा की शक्ति है जो समस्त लोकों तथा इस जगत् के सभी तत्त्वों में व्याप्त है तथा यही प्राणियों में प्रेरणामूर्ति बनकर उन-उन भावों की सृष्टि करती है। भाषाशास्त्रीयदृष्टि से यह सूक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

5) **यम सूक्त (10/135)** – इस सूक्त में यमलोक से सम्बद्ध रहस्यों का वर्णन है।

इसी प्रकार पितृसूक्त, मृत्युसूक्तादि भी पितृलोक मृत्यु आदि से सम्बद्ध रहस्यों को उद्घाटित करते हैं।

सामाजिक/सांस्कृतिक महत्त्व के सूक्त –

1) **श्रद्धा सूक्त (10/151)** –इस सूक्त में 'श्रद्धा' की देवता के रूप में उपासना की गयी है। जीवन में सत्य को धारण करने से श्रद्धा का आविर्भाव होता है यही लोक में धनप्राप्ति का भी स्रोत है–

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्याकूल्या श्रद्धया विन्दतेवसु।।ऋग्वे. **(10/151/4)**

यह सूक्त हिन्दी के छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद की कामायनी का मूल स्रोत है।

2) **संवाद सूक्त** – ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में संवाद-विधि के माध्यम से पुराकथाओं का नाटकीय शैली में वर्णन प्राप्त होता है। इन्हें ही 'संवाद सूक्त' कहा गया है। इनमें तीन संवाद सूक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं– (क) पुरुरवा-उर्वशी संवाद **(10/185)** (ख) यम-यमी संवाद **(10/10)** (ग) सरमा-पणि संवाद **(10/130)**।

पुरुरवा-उर्वशी संवाद के 18 मन्त्रों में पुरुरवा-उर्वशी के अकुण्ठित प्रणय तथा अन्त में उर्वशी के निष्ठुरतापूर्वक स्वर्ग चले जाने की मार्मिक कथा वाद-संवाद के माध्यम से प्रस्तुत की गयी है। महाकवि कालिदास प्रणीत 'विक्रमोर्वशीयम्' का मूलस्रोत यही संवाद सूक्त है।

यम-यमी संवाद मानव चरित्र की उत्कृष्टता का प्रतीक है। इसमें वासनोत्कण्ठित यमी की अपने भाई यम के प्रति आसक्ति तथा समागम की प्रार्थना करने पर यम के द्वारा उसे अनुचित बताते हुए अन्य पुरुष के वरण का परामर्श देने सम्बन्धी कथा का वर्णन है।

सरमा-पणि संवाद में पणियों (स्वार्थी व्यापारियों) के द्वारा देवताओं की गाय चुराने तथा पणियों को समझाने के लिये दूत के रूप में प्रेषित सरमा के परस्पर संवाद का वर्णन है।

3) **दान-स्तुतिपरक सूक्त** – कात्यायन सर्वानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद के 22 सूक्तों में दानस्तुतियाँ हैं जबकि आधुनिक विद्वान् इनकी संख्या 68 मानते हैं। प्रायः अष्टम मण्डल में अधिकांश दानस्तुतियाँ हैं। इन सूक्तों में दान की गौरवशालिता का वर्णन है तथा अन्नदान को महादान बताया गया है–

यं आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दति।।
(ऋग्वे. **10/117/2)**

4) **संज्ञान सूक्त** – यह सूक्त मानव-समाज को एकता के सूत्र में निबन्धित रहने तथा परस्पर सद्भाव बनाये रखने का सन्देश देता है–

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।(ऋग्वे. **10/191/2)**

यह ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त है।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के परिशिष्टरूप-खिलसूक्तों में श्रीसूक्त, बालखिल्यसूक्त, सुषुम्नीसूक्त, एकादिसूक्त, रात्रिसूक्त, आयुष्यसूक्त, मेधा सूक्त, शिवसंकल्पसूक्तादि भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक ही वेद की परशाखा से किसी अपेक्षा को लेकर जिस अंश का ग्रहण किया जाता है, उन्हें 'खिल' कहते हैं।

1.4.2 यजुर्वेद संहिता

यज्ञादि कर्मों के प्रतिपादक गद्यात्मक मन्त्रों को 'यजुष्' कहा जाता है–**'गद्यात्मको यजुः'** अथवा **'शेषे यजुः'** (जै.मी.सू.) अथवा **'अनियताक्षरावसानो यजुः'** अर्थात् जिसमें अक्षरों की संख्या नियत न हो, वह 'यजुष्' है। यजुर्वेद कर्मकाण्डप्रधान है। सायण ने यजुर्वेद को भित्तिस्थानीय तथा ऋक् और साम को चित्रस्थानीय बताया है–'भित्तिस्थानीयोयजुर्वेदश्चित्रस्थानीयावितरौ'(तैत्तिरीयभाष्यभूमिका)। यास्क ने भी 'यजुष्' शब्द की निरुक्ति 'यज्' धातु से बतायी है– यजुर्यजतेः (निरु. 7-12) जिससे यज्ञ से यजुर्वेद का साक्षात् सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

किस यज्ञ में किन मन्त्रों का प्रयोग किया जाना अपेक्षित है, इसकी विधियाँ यजुर्वेद में ही वर्णित हैं। अतः आध्वर्यव कर्म के लिये उपादेय यजुषों (गद्यात्मक मन्त्रों) का संग्रह ही यजुर्वेद है।

1) **यजुर्वेद के विभाग** – यजुर्वेद के दो विभाग हैं– कृष्ण यजुर्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद। यजुर्वेद के कृष्णत्व तथा शुक्लत्व के विषय में एक आख्यान प्रसिद्ध है कि वेदव्यास से यजुर्वेद संहिता उनके शिष्य वैशम्पायन को प्राप्त हुई तथा वैशम्पायन से याज्ञवल्क्यादि शिष्यों में संक्रान्त हुई। कदाचित् वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्य पर क्रुद्ध हो गये तथा उनसे अधीतविद्या (मन्त्रराशि) लौटाने को कहा। तब याज्ञवल्क्य ने योगबल से अधीतवेद विद्या का वमन कर दिया जिसको वैशम्पायन के अन्य शिष्यों ने तित्तिर बनकर धारण कर लिया जिससे यजुर्वेद कृष्ण हो गये। आगे चलकर याज्ञवल्क्य ने सूर्य की उपासना कर उनसे पुनः जिन यजुषों को प्राप्त किया, वे शुक्ल यजुर्वेद कहलाये।

   यजुर्वेद के कृष्णत्व और शुक्लत्व का मूलभूत कारण वस्तुतः यह है कि शुक्ल यजुर्वेद में केवल मन्त्रों का संकलन है, जबकि कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ ब्राह्मणों का भी सम्मिश्रण है।

   यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय हैं– ब्रह्मसम्प्रदाय तथा आदित्यसम्प्रदाय। इनमें ब्रह्मसम्प्रदाय का प्रतिनिधि कृष्ण यजुर्वेद है तथा आदित्य सम्प्रदाय का प्रतिनिधि शुक्ल यजुर्वेद है।

2) **यजुर्वेद के ऋषि** – यजुर्वेद के मन्त्रदृष्टा प्रायः वही ऋषि हैं, जो ऋग्वेद के मन्त्रों के दृष्टा थे तथापि यजुर्वेद के कर्मकाण्डप्रधान होने से याज्ञिक अनुष्ठानादि के निमित्त परमेष्ठ्यादि ऋषि बताये गये हैं। इसमें कारण यह है कि ऋग्वेद में ऋषियों की दृष्टि से मन्त्र संकलित किये गये हैं, जबकि यजुर्वेद में यज्ञविधान को लक्ष्य बनाकर मन्त्रों का संकलन किया गया है। अतः जो ऋषि जिस यज्ञ का प्रवाचक था, वही (ऋषि) उस यज्ञ प्रसंग में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का ऋषि व्यवस्थित कर दिया गया।

   यज्ञ की दृष्टि से ऋषियों का आर्षेयत्व तैत्तिरीय संहिता में भी बताया गया है। 'आर्षेय' का तात्पर्य है– यज्ञानुष्ठानादिकर्म में मन्त्रविशेष का स्मरणकर्ता ऋषि। इस आर्षेयत्व की दृष्टि से ही तैत्तिरीय संहिता में पाँच काण्ड निर्दिष्ट किये गये हैं– प्राजापत्यकाण्ड, सौम्यकाण्ड, आग्नेयकाण्ड, वैश्वदेवकाण्ड, स्वयम्भुवकाण्ड।

3) **यजुर्वेद के ऋत्विज्** – यजुर्वेद का ऋत्विज् अध्वर्यु कहलाता है। यज्ञकर्म में इसके तीन सहायक होते हैं– प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा तथा उन्नेता। यजुर्वेद के

ऋत्विजों की सामूहिक संज्ञा 'अध्वर्युवर्ग' या 'अध्वर्युमण्डल' है। यजुर्वेद के इन ऋत्विजों का कार्य यज्ञानुष्ठान में यज्ञभूमि तैयार करना, वेदि निर्माण, यज्ञीय पात्रों समिधादि की व्यवस्था करना, अग्नि को समिद्ध करना, पुरोडाश पकाना आदि जितने भी कृत्य हैं, उनका यजुष् मन्त्रों का विनियोग करते हुए सम्पादन करना था। अध्वर्यु के द्वारा विनियुक्त मन्त्रों का यजुर्वेद में संकलन होने से इस वेद को 'अध्वर्युवेद' भी कहते हैं।

4) **यजुर्वेद की शाखायें** – यजुर्वेद की शाखाओं के विषय में पतञ्जलि का मत है–**'एकशतमध्वर्युशाखाः'** अर्थात् यजुर्वेद की लगभग 100 शाखायें थीं। आचार्यों ने कृष्ण यजुर्वेद की 86 तथा शुक्ल यजुर्वेद की 15 शाखाओं (86+15 =101 शाखाओं) का उल्लेख किया है किन्तु सम्प्रति यजुर्वेद की केवल छः शाखायें ही उपलब्ध हैं। कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखायें (संहितायें) हैं–(1) तैत्तिरीय (2) मैत्रायणी (3) कठ (4) कपिष्ठल। शुक्ल यजुर्वेद की केवल दो शाखायें ही उपलब्ध हैं– (1) काण्व (वाजसनेयी) (2) माध्यन्दिन संहिता।

5) **यजुर्वेद का वर्ण्य-विषय (शाखाक्रमानुसार)** – यजुर्वेद की अवान्तर शाखाओं का परिचय निर्देशपूर्वक प्रतिपाद्य विषय क्रमशः द्रष्टव्य है–

क) **कृष्ण यजुर्वेद संहिता** – कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ-साथ ब्राह्मणों का भी सम्मिश्रण है इसकी चारों शाखाओं (तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ तथा कपिष्ठल शाखा) का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

1) **तैत्तिरीय संहिता** – वैशम्पायन के शिष्यों द्वारा तित्तिर बनकर याज्ञवल्क्य के द्वारा वमन किये गये यजुषों का भक्षण करने के कारण इस संहिता का नाम तैत्तिरीय संहिता पड़ा। यह कृष्ण यजुर्वेद की प्रतिनिधि शाखा है। इसमें 7 काण्ड, 44 प्रपाठक तथा 931 अनुवाक् हैं।

विषय-वस्तु की दृष्टि से प्रथम काण्ड के प्रथम प्रपाठक में दशपूर्णमास के मन्त्र, द्वितीय प्रपाठक में अग्निष्टोम तथा सोमक्रय से सम्बद्ध मन्त्र हैं। इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, पष्ठ, सप्तम तथा अष्टम प्रपाठक में क्रमशः पशुयाग मन्त्र, ग्रहयाग से सम्बद्ध मन्त्र, पुनराधानविधायक मन्त्र, याजमानकाण्ड याजमानब्राह्मण तथा राजसूययाग से सम्बद्ध मंत्रों को संकलित किया गया है।

द्वितीय काण्ड के प्रथम प्रपाठक में पशुविधान, द्वितीय से लेकर पञ्चम प्रपाठक तक इष्टिविधान तथा षष्ठ प्रपाठक में अवशिष्टकर्मों का अभिधान किया गया है।

तृतीय काण्ड के पाँच प्रपाठकों में क्रमशः न्यूनकर्माभिधान, पावमानग्रहादि का व्याख्यान वैकृत विधियों का अभिधान इष्टिहोम तथा इष्टिशेष का वर्णन है।

चतुर्थ काण्ड के सात प्रपाठकों में क्रमशः अग्निचित्यंगमन्त्र के पाठ, देवयजनग्रह, चितिवर्णन पञ्चमचितिशेष का निरूपण, होमविधि तथा परिषेचनसंस्कार और वसोर्धारादिष्टसंस्कारों का वर्णन किया गया है।

पञ्चम काण्ड में भी सात प्रपाठक हैं जिनमें क्रमशः उख्याग्निकथन, चित्युपक्रम, चिति का निरूपण, इष्टकात्रय का कथन वायव्यपशवादि निरूपण, उपानुवाक्य, उपानुवाक्य से अवशिष्ट कर्मादि का निरूपण किया गया है।

षष्ठ काण्ड के छः प्रपाठकों का वर्ण्य-विषय 'सोममन्त्रब्राह्मण' है।

सप्तम काण्ड के पाँच प्रापठकों में अश्वमेघ से सम्बद्ध मन्त्र, षड्यात्रा, सत्रजात, सत्रकर्म का निरूपण तथा सत्रविशेष का वर्णन किया गया है।

2) **मैत्रायणी** –कृष्ण यजुर्वेद की इस शाखा का प्रवचन मित्रयु नामक आचार्य ने किया था। अतः यह शाखा (संहिता) 'मैत्रायणी' नाम से प्रसिद्ध हुई।

दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिः मित्रयुर्नृपः।
मैत्रायणस्ततः सोमो मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः।।(हरिवंश 1-32-75–76)

मैत्रायणी संहिता में चार काण्ड तथा 54 प्रपाठक हैं। इनमें से 19 प्रपाठकों में केवल मन्त्र हैं तथा 25 में मात्र ब्राह्मण हैं तथा 10 प्रपाठकों में दोनों का सम्मिश्रण है। अतः कृष्ण यजुर्वेद की अन्य संहिताओं की तरह इसका स्वरूप भी मन्त्रब्राह्मणात्मक है। मैत्रायणी संहिता में 2144 मन्त्र हैं, जिनमें 701 मन्त्र ऋग्वेद से उद्धृत हैं।

मैत्रायणी संहिता में प्रधानतः दशपूर्णमासेष्टि ग्रहग्रहण (सोमयाग), अग्न्युपस्थान, अग्न्याधान, पुनराधान, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, वाजपेय काम्येष्टियाँ, राजसूय, अग्निचिति, सौत्रामणि तथा अश्वमेध का विवेचन किया गया है। इस संहिता में कुछ ऐसे प्रसंग हैं जो अन्यत्र नहीं मिलते, यथा दृगोनामिक प्रकरण। इसमें गाय के नामों का उल्लेख करते हुए उनकी महिमा बतायी गयी है।

3) **काठक संहिता** – कृष्णयजुर्वेदीय शाखाओं में यह शाखा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। पातञ्जल महाभाष्य के अनुसार– यह शाखा इतनी लोकप्रिय थी कि गाँव-गाँव में इस शाखा का प्रचार था–**'ग्रामे ग्रामे कठं कालापकं च प्रोच्यते'** (पा.सू.4-3-101 पर भाष्य)। कठ नाम के आचार्य ने इसका प्रवचन किया था इसलिये इसे काठक संहिता कहा जाता है। ये यजुर्वेद के प्रथम आचार्य वैशम्पायन के नव अन्तेवासी शिष्यों (आलम्वि, कलिंग, कमल, ऋचाभ, आरुणि, ताण्ड्य, श्यामायन, कठ तथा कलापी) में अन्यतम थे। 'कठ' महर्षि भरद्वाज के शिष्य तथा बहनोई थे।

काठक संहिता के पाँच खण्ड हैं– इठिमिका, मध्यमिका ओरिमिका, याज्यानुवाक्या तथा अश्वमेधाद्यनुवचन। प्रथम चार खण्डों का अवान्तर विभाजन स्थानकों में किया गया है जिनमें 40 स्थानक हैं जबकि पञ्चम खण्ड 13 अनुवचनों में विभाजित है। विषय वर्णन की दृष्टि से प्रथम खण्ड में पुरोडाश, अध्वर, अग्निहोत्र, पशुवध, वाजपेय, राजसूयादि का वर्णन, द्वितीय (माध्यमिका) खण्ड में सावित्र इत्यादि का निरूपण है तथा ओरिमिका नामक तृतीय खण्ड में सत्र तथा सवयागों सौत्रामणि यदक्रन्द तथा हिरण्यगर्भ का वर्णन है। अन्तिम खण्ड में पन्थानुवचन हैं। इसमें मंत्रब्राह्मणों की सम्मिलित संख्या 1800 है।

इस संहिता की स्वरप्रक्रिया अन्य संहिताओं से भिन्न है। उपनिषद् साहित्य में अन्यतम 'कठोपनिषद्' का सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद की इसी शाखा से है।

4) **कपिष्ठल संहिता** – कपिष्ठल कठ शाखा की एक अपूर्ण प्रति ही उपलब्ध होती है। अतः इसके विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती। केवल इतना

ही ज्ञात होता है कि इसका विभाजन ऋग्वेद के समान अष्टकक्रम में था तथा इसकी विषय-वस्तु काठक संहिता के समान थी।

ख) शुक्ल यजुर्वेद संहिता – वैशम्पायनोक्त मन्त्र-ब्राह्मणात्मक यजुर्वेद संहिता का परित्यागकर याज्ञवल्क्य ने आदित्य की उपासना करके यजुर्वेद की जिस विशुद्ध मन्त्रात्मक संहिता का प्रवचन किया वह यजुर्वेद संहिता शुक्ल यजुर्वेद या वाजसनेयी संहिता के नाम से प्रसिद्ध हुई। वाजसेनी के पुत्र याज्ञवल्क्य द्वारा दृष्ट होने के कारण इस संहिता का नाम वाजसनेयी संहिता पड़ा। वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने आदित्य द्वारा प्राप्त इस शुक्ल यजुर्वेद का प्रवचन जाबालि आदि अपने 15 शिष्यों को दिया। इन शिष्यों के द्वारा प्रवर्तित 15 शाखाओं में से सम्प्रति दो शाखायें ही उपलब्ध होती हैं– (1) माध्यन्दिन (2) काण्व शाखा। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

1) माध्यन्दिन संहिता – याज्ञवल्क्य के शिष्यों में से 'माध्यन्दिन' नामक शिष्य के द्वारा इस शाखा का प्रवचन किये जाने से इस शाखा का नाम 'माध्यन्दिन' पड़ा अथवा इस अभिधान का द्वितीय कारण यह है कि वाजिरूप सूर्य ने याज्ञवल्क्य को दिन के मध्यकाल में यजुष् मन्त्रों का प्रवचन किया था। कदाचित् इस कारण से इसे माध्यन्दिन संहिता कहा जाता है। माध्यन्दिन संहिता में 40 अध्याय तथा अध्यायों के अन्तर्गत अनेक कण्डिकायें हैं इन कण्डिकाओं की संख्या 1975 है।

विषय-वस्तु की दृष्टि से माध्यन्दिन संहिता के आरम्भिक दो अध्यायों में दशपूर्णमास इष्टियों के मन्त्रों का संकलन किया गया है। तृतीय अध्याय में अग्न्याधान, अग्निहोत्र, अग्न्युपस्थापन, चातुर्मास्येष्टि विषयक मन्त्रों को उपन्यस्त किया गया है। चतुर्थ से अष्टम अध्यायों में सोमयागोपयुक्त अग्निष्टोम मन्त्र हैं। नवम-दशम अध्यायों में वाजपेय तथा राजसूययागों से सम्बद्ध मन्त्र हैं। एकादश अध्याय से अष्टादश अध्याय तक अग्निचयन तथा होमविषयक मन्त्र हैं। उन्नीस से इक्कीस अध्यायों तक सौत्रामणी से सम्बद्ध मन्त्रों का संकलन है। बाइसवें अध्याय से पचीसवें अध्याय तक अश्वमेध से सम्बद्ध मन्त्रों का उल्लेख किया गया है। षड्विंशति अध्याय से लेकर ऊनविंशति अध्यायपर्यन्त 15 अध्याय खिलमन्त्रों का संग्रह है। इनमें अग्निष्टोम, अग्निचयन, सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध, पुरुषसूक्त, सर्वमेध पितृमेध, उपनिषद् प्रवर्ग्य से सम्बद्ध वे मन्त्र हैं जिनका विनियोग पूर्व प्रकरण में नहीं हुआ हैं। प्रसिद्ध 'शिवसंकल्प सूक्त' भी इन्हीं खिल मन्त्रों के अन्तर्गत 34वें अध्याय का विषय है तथा इस संहिता का अन्तिम 40वाँ अध्याय ईशावास्योपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है।

2) काण्व संहिता – शुक्लयजुर्वेदीय इस संहिता के प्रवचनकर्ता महर्षि कण्व हैं जिनके नाम पर इसे 'काण्व संहिता' कहा जाता है। काण्व संहिता में भी 40 अध्याय हैं, किन्तु माध्यन्दिन संहिता की अपेक्षा मन्त्रों की संख्या इसमें अधिक है। विषय विवेचन की दृष्टि से भी दोनों संहिताओं में साम्य हैं, किन्तु मन्त्रोच्चारण की दृष्टि से काण्व संहिता का माध्यन्दिन संहिता से भेद है। 'काण्व संहिता'–अध्यायी मन्त्रों का उच्चारण ऋग्वेद के समान करते हैं जैसे– 'पुरुषा' का पुरुषाः रूप में ही उच्चारण करते हैं, जबकि माध्यन्दिन संहिता पाठकों की अपनी अलग परिपाटी है। वे 'पुरुषाः' का उच्चारण 'पुरुखा' करते हैं।

श्रौतयागों के स्वरूप को समग्ररूप में जानने के लिये यजुर्वेद की सभी शाखायें नितान्त उपयोगी हैं।

1.4.3 सामवेद संहिता

वैदिक संहिताओं में साम का महत्त्व नितान्त गौरवमय है। बृहद्देवता का कथन है कि जो पुरुष साम को जानता है, वही वेद के समग्र रहस्यों को जानता है–**'सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम्'**। 'श्रीमद्भगवद्गीता में **'ओंकारः सर्ववेदानाम्'** (श्रीमद्भगवद्गीता) कहकर वेदों का मूल ओंकार को बताया गया है। ओंकार को ही उद्गीथ भी कहते हैं जो कि भगवत्स्वरूप है। यह ओंकार (उद्गीथ) ही सामवेद का सार है–**'साम्ना उद्गीथो रसः '**(छान्दोग्योपनिषद्)। इसी कारण श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने भी कहा है– **'वेदानां सामवेदोऽस्मि'** (श्रीमद्.गी. 10-22) शतपथ ब्राह्मण में भी **'ना साम यज्ञो भवति'** कहकर सामवेद के महत्त्व को उद्घाटित किया गया है।

'साम' (सामन्) शब्द का अर्थ है शोभन सुखकर वचन। 'साम' शब्द 'सो' धातु (प्रसादनार्थक शान्त्यर्थक) से 'मानिन्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। साम शब्द का दो अर्थों में प्रयोग दृष्टिगत होता है। प्रधानतः ऋग्वेद की ऋचाओं (ऋक्मन्त्रों) पर ऋषियों द्वारा किया जाने वाला गान ही 'साम' कहलाता है जैसा कि छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है–**'ऋच्यव्यूढं साम'** (छां.उ. 1/6/1)। बृहदारण्यकोपनिषद् में भी 'साम' शब्द की निरुक्ति इसी अर्थ में की गयी है–**'सा च अमश्चेति तत्साम्नाः सामत्वम्'** (बृ. 3-1/3/22)। यहाँ 'सा' का अर्थ है 'ऋक्' तथा 'अम' शब्द का अर्थ है षडजादि स्वर अर्थात् साम का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हुआ– ऋक् से सम्बद्ध स्वरप्रधानगायन जिसमें हो, वह 'साम' है। इस प्रकार गानरूपता ही साम का सामत्व है। जैमिनीय सूत्र भी 'गीति' को ही साम की संज्ञा प्रदान करते हैं–**'गीतिषु समाख्या'** (जै.मी.सू. 2-1-37)

यद्यपि 'साम' का तात्पर्य मूलतः गान से है तथापि जिन ऋक् मन्त्रों पर सामगान किया जाता है उन (सामोपयोगी) ऋचाओं के लिये भी 'साम' शब्द प्रयुक्त होता है। ऐसी ऋचाओं को 'सामयोनि' ऋचायें कहा जाता है। सामवेद संहिता मूलतः इन्हीं सामयोनि ऋचाओं तथा उनके गानों का संग्रहमात्र है।

1) **सामवेद के विभाग** – सामवेद संहिता के दो विभाग हैं– (1) आर्चिक संहिता, (2) गानसंहिता। 'आर्चिक' का शाब्दिक अर्थ है– ऋक्समूह। अतः इसके अन्तर्गत सामयोनि ऋचाओं का संकलन है। आर्चिक संहिता के अवान्तर दो विभाग हैं– पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक।

   पूर्वार्चिक में 6 अध्याय (प्रपाठक) हैं। प्रति 6 प्रपाठक में दो खण्ड हैं। प्रति खण्ड में एक दशति है जिसमें छन्द तथा देवताओं की एकता के आधार पर भिन्न-भिन्न ऋषियों के द्वारा द्रष्ट ऋचाओं का संग्रह है। इसमें प्रथम प्रपाठक को अग्निविषयक ऋक् मन्त्रों का समूह होने से आग्नेय काण्ड (पर्व), द्वितीय से चतुर्थ प्रपाठक तक इन्द्र की स्तुति होने से ऐन्द्र काण्ड (पर्व), पञ्चम प्रपाठक में सोमविषयक ऋचाओं का संग्रह होने से 'पवमानपर्व' तथा षष्ठ प्रपाठक को 'अरण्यपर्व' की संज्ञा दी गयी है। इनमें प्रथम से पञ्चम प्रपाठक तक की ऋचाएँ ग्रामगान कही जाती हैं किन्तु षष्ठ प्रपाठक की ऋचायें अरण्य में गायी जाती हैं।

पूर्वार्चिक के अन्त में परिशिष्ट रूप में 'महानाम्नि' नामक ऋचायें (10) दी गयी हैं। इस प्रकार पूर्वार्चिक की मन्त्र संख्या 650 है।

उत्तरार्चिक का विभाजन दो प्रकार से किया गया है– (1) प्रपाठकक्रमानुसार (2) अध्यायक्रमानुसार। प्रपाठक क्रम से उत्तरार्चिक में नव प्रपाठक हैं। इनमें प्रथम पाँच प्रपाठकों में दो-दो भाग हैं तथा अन्तिम चार प्रपाठकों में तीन-तीन अर्द्ध हैं। अध्यायक्रमानुसार उत्तरार्चिक में 21 अध्याय हैं। प्रति अध्याय खण्डों में विभाजित हैं जिनकी संख्या 119 है। उत्तरार्चिक के समग्र मन्त्रों की संख्या 1225 है।

यहाँ ध्यातव्य है कि पूर्वार्चिक के 267 मन्त्र उत्तरार्चिक में पुनरुक्त है। अतः ऋग्वेद की वस्तुतः 1504 ऋचायें (650+1225 = 1875–267 =1504) ही सामवेद में उद्धृत की गयी हैं। इनमें भी 99 ऋचायें सर्वथा नवीन हैं जो कि ऋग्वेद की शाकल शाखा में अप्राप्त हैं। सम्भवतः इनका संकलन ऋग्वेद की अन्य शाखाओं की संहिताओं से किया गया होगा।

सामवेद का द्वितीय विभाग है– 'गानसंहिता।' इसमें पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक में संकलित सामयोनि ऋचाओं पर गेय सामगानों का स्वरलिप्यंकन सहित संकलन है। अतः यह 'गानसंहिता' सामवेद संहिता के स्वरमय स्वरूप को उद्घाटित करती है। 'गानसंहिता' के दो विभाग हैं– पूर्वगान तथा उत्तरगान। गान की दृष्टि से इसके 4 विभाग हैं– (1) ग्रामेयगान, (2) आरण्यगेयगान, (3) ऊहगान, (4) ऊह्यगान। इनमें प्रथम दो का सम्बन्ध पूर्वगान तथा अन्तिम दो का सम्बन्ध उत्तरगान से है।

सामवेद की विभागरूप इन दोनों (आर्चिक तथा गान) संहिताओं के सामवेदत्व के विषय में विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों में 'आर्चिक संहिता' को ही सामवेद मानने की परम्परा रही है, किन्तु सायणादि वैदिकभाष्यकारों ने गान संहिता को ही मूल सामवेद संहिता स्वीकार किया है क्योंकि साम का मूल अर्थ है गान, न कि ऋक्। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने दोनों में समन्वय करते हुए निष्कर्ष दिया है–'वस्तुतः परम्परा से दोनों ही संहिताओं का सामवेदत्व विहित है। आर्चिक संहिताओं का सामवेदत्व इस रूप में है कि उनके ऊपर सामगान किया जाता है और गानों का सामवेदत्व तो था ही क्योंकि मूल सामवेदत्व तो गान का ही है।'

2) **सामवेद के ऋषि** – सामवेद के परिप्रेक्ष्य में ऋषियों का तात्पर्य केवल मन्त्र के साक्षात्कर्ता ऋषियों से ही नहीं है, अपितु सामग ऋषियों से भी है। वस्तुतः सामवेद के ऋषियों का निर्धारण करना अत्यन्त दुष्कर है क्योंकि सामवेद में कुछ मन्त्र ऐसे हैं जिनके दृष्टा तथा गायक एक ही ऋषि हैं। कुछ मन्त्र ऐसे हैं जिनके दृष्टा तथा गायक पृथक्-पृथक् ऋषि हैं। कुछ के गायक ऋषि अनेक हैं तथा कुछ मन्त्रों के दृष्टा तथा गायक ऋषियों के ज्ञानाभाव में ऋषि विशेष भी परिकल्पित कर लिये गये हैं। हाँ, सामवेद के ऋषियों के सन्दर्भ में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सामवेद की आधारभूत ऋग्वेद की ऋचाओं के जो मन्त्रदृष्टा ऋषि है वही सामवेदीय (सामयोनि) ऋचाओं के भी मन्त्रदृष्टा ऋषि होंगे तथा गानपरम्परा की दृष्टि से जिस साम का गान जिस ऋषि ने किया, वह मन्त्र उसी ऋषि के नाम से ख्याति में आया, जैसे भरद्वाज के द्वारा किया गया सामगान 'भारद्वाज साम' वामदेव के द्वारा गीत साम 'वामदेव्य', कण्व द्वारा गाया गया साम 'काण्वसाम' कहलाया।

3) **सामवेद के देवता** – कात्यायन का कथन है– जो मन्त्रों द्वारा स्तुत्य होता है, वही देवता है। सामवेद संहिता में देवता विचार के दो प्रमुख सिद्धान्त हैं– (1) आर्चिक संहिता को 'दैवत संहिता' भी कहा जाता है क्योंकि इसमें देवताओं की दृष्टि से सामयोनि ऋचाओं का अध्यायों (प्रपाठकों) में संग्रह किया गया है। पूर्वार्चिक के प्रारम्भिक पाँच अध्यायगत तीन पर्वों (आग्नेय, ऐन्द्र तथा पवमान काण्डों) के देवता क्रमशः अग्नि, इन्द्र सोम हैं। षष्ठ अध्याय (चतुर्थपर्व अरण्य काण्ड) के 55 मन्त्र सूर्य, अग्नि, इन्द्र, सोमपुरुषादि 15 देवताओं से सम्बद्ध हैं। महानाम्न्यार्चिक के दस मन्त्रों के देवता प्रजापति हैं।

उत्तरार्चिक में पन्द्रहवें तथा इक्कीसवें (दो) अध्यायों के देवता क्रमशः अग्नि तथा इन्द्र हैं। शेष अध्यायों में विविधदेवताविषयक सूक्त हैं।

गान संहिता में आर्चिक संहिता के अन्तर्गत संकलित सामयोनि ऋचाओं के ही गान का संकलन है अतः गान के भी वही देवता हुए, जो सामयोनि ऋचाओं के हैं। फिर भी पाँच अन्य दृष्टियों से भी गानसंहिता में संकलित सामगानों के देवता का निर्णय किया जाता है।

1) सवन की दृष्टि से देवतानिर्णय– यथा प्रातः माध्यन्दिन तथा तृतीयसवन के देवता क्रमशः वसुगण रुद्रगण तथा आदित्यगण हैं।

2) सामवैविध्य की दृष्टि से अधिष्ठातृदेवता का निर्णय यथा– त्रिवृत्तसोम ब्राह्मण से सम्बद्ध है। अग्नि ब्राह्मण है अतः त्रिवृत्त सोम का देवता अग्नि है।

3) सामभक्तियों की दृष्टि से देवतानिर्णय– साम की मुख्यतः 5 भक्तियाँ हैं। इनमें प्रस्ताव, उद्गीथ तथा प्रतिहार भक्तियों के देवता क्रमशः प्राण, आदित्य तथा अन्न है। निधन नामक भक्ति के अग्नि, इन्द्र, प्रजापति आदि 10 देवता हैं।

4) छन्द की दृष्टि से देवतानिर्णय– दैवतब्राह्मण में गायत्री, उष्णिक् आदि छन्दों की दृष्टि से सामयोनि ऋचाओं के अग्नि, सविता, सोम, बृहस्पति, मित्रावरुणादि कुल 12 देवता है।

5) स्वर की दृष्टि से देवतानिर्णय– सामगान में प्रयुक्त सात स्वरों (क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार्य) के देवता क्रमशः देवतात्रय (प्रजापति, विश्वेदेव, ब्रह्मा) आदित्य साध्यअग्नि, वायु, सोम तथा मित्रावरुण है।

4) **सामवेद के ऋत्विज्** – सामवेद के ऋत्विज् को उद्गाता कहते हैं। इसके तीन सहायक होते थे– प्रस्तोता, प्रतिहर्ता तथा सुब्रह्मण्य। इन चारों ऋत्विजों के समूह को 'उद्गातृमण्डल' या 'उद्गातृवर्ग' कहा जाता था। इनका कार्य यज्ञानुष्ठानादि मांगलिक कृत्यों में सामगान करना होता था। उद्गाता नामक ऋत्विज् से सम्बद्ध होने के कारण सामवेद को 'उद्गातृवेद' भी कहते हैं।

5) **सामवेद का वर्ण्य-विषय** – चतुर्वेदों में सामवेद संगीत प्रधान वेद है।इसका मूल प्रतिपाद्य विषय है– विविध देवताओं से सम्बद्ध यज्ञानुष्ठानोपयोगी सामयोनि ऋचाओं का संग्रह तथा उनकी गान-पद्धतियों का निरूपण। सामवेद की आर्चिक संहिता में पूर्वार्चिक के अन्तर्गत आग्नेय पर्व में अग्निसम्बद्ध, ऐन्द्रपर्व में इन्द्रविषयक, पवमान पर्व में सोम से सम्बद्ध तथा आरण्यक पर्व और महानाम्नी ऋचाओं में विविध देवताओं से सम्बद्ध एकर्च सामयोनि ऋचाओं का संकलन है।

उत्तरार्चिक में प्रगाथ (द्वयर्च) तथा तृचादि सूक्त पठित हैं। इनमें अधिकतर की पहली (योनिभूत) ऋचायें पूर्वार्चिक में पठित हैं। इस प्रकार पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक में मूलभूत अन्तर यह है कि पूर्वार्चिक में नानाविध सामों की योनिभूत ऋचायें पठित हैं जबकि उत्तरार्चिक में प्रगाथ एवं तृचादि सूक्त संकलित हैं।

'गानसंहिता' में आर्चिक संहिता के अन्तर्गत संकलित सामयोनि ऋचाओं पर गाये जाने वाले सामगानों का संकलन किया गया है अर्थात् इसमें साम के स्वरमय स्वरूप (स्वरलिपि सहित गान) का संकलन हुआ है। गानसंहिता में गान की दृष्टि से साम संहिता के चार विभाग हैं– (1) ग्रामगेय गान (2) आरण्यक गान (3) ऊहगान (4) ऊह्यगान। इनमें प्रथम दो (ग्रामगेय गान तथा आरण्यकगान) का सम्बन्ध पूर्वार्चिक में संग्रहीत सामयोनि ऋचाओं के गान से है तथा अन्तिम दो (ऊहगान तथा ऊह्यगान) का सम्बन्ध उत्तरार्चिक में संग्रहीत प्रगाथ तृचादि के गान से है। ऊहगान में यज्ञकर्म के आधार पर सात विभाग हैं– दशरात्रपर्व, संवत्सरपर्व, एकाहपर्व, अहीनपर्व, सत्रपर्व, प्रायश्चितपर्व तथा क्षुद्रपर्व। उपर्युक्त गानप्रकारों में ग्रामगेयगान तथा आरण्यकगान 'प्रकृति (योनि) गान' है जबकि ऊहगान तथा ऊह्यगान क्रमशः उनकी विकृतियाँ हैं क्योंकि ग्रामगेय में प्रयुक्त स्वररागादि का आश्रय लेकर ही ऊहगान का निर्माण होता है तथा अरण्यगान के स्वर रागादि के आधार पर ही ऊह्यगान की रचना की गयी है।

सामवेदियों की मान्यता है कि ग्रामगेयगान ग्राम में समाज में गाने योग्य होते हैं परन्तु 'अरण्यगान' केवल अरण्य में ही गाने योग्य होते हैं। ग्राम में गाने से उनसे अनर्थ की सम्भावना रहती है। अरण्य के पवित्र वातावरण में ही उनका उचित गायन सम्भव है तथा उनसे उचित प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। 'ऊह' का अर्थ है ऊहन। किसी अवसरविशेष पर मन्त्रों का सामयिक परिवर्तन। इस प्रकार सोमयाग के अवसर पर प्रयोजनीय सामों को 'ऊहगान' कहते हैं। 'ऊह्यगान' के भी अरण्यगान के समान रहस्यात्मक होने से उनका सर्वसाधारण के सामने गान निषिद्ध है।

6) **सामवेद की शाखायें** – सामवेद की शाखाओं के सन्दर्भ में प्रसिद्धि है–'**सहस्रवर्त्मा सामवेदः** 'अर्थात् सामवेद की सहस्त्र शाखायें थीं। पौराणिकाख्यानानुसार महर्षि वेदव्यास ने सामवेद की शिक्षा जैमिनि को दी तदुपरान्त जैमिनी से उसके पुत्र सुकर्मा को तथा सुकर्मा से उसके दो शिष्यों– हिरण्यनाभ तथा पौष्यञ्जि को प्राप्त हुई, जिनके द्वारा सामवेद की क्रमशः प्राच्य और उदीच्य धारायें उद्भावित हुईं। हिरण्यनाभ का शिष्य कृत था, जिससे 24 अनुयायी शिष्यों ने सामवेद की शिक्षा ग्रहण की–

चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः।
स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्ता नामेह सामगाः।।

इस प्रकार सामवेद के शिष्य-प्रशिष्यों में संक्रान्त होने से विविध शाखाओं का आविर्भाव हुआ। प्राचीन ग्रन्थों सामतर्पण तथा चरणव्यूह में सामवेद की 13 शाखाओं का उल्लेख मिलता है, किन्तु उनके नाम दोनों ग्रन्थों में भिन्न हैं।

सम्प्रति सामवेद की तीन शाखायें ही उपलब्ध हैं– कौथुमीया, राणायनीया, जैमिनीया। इनका संक्षिप्त विवरण क्रमशः द्रष्टव्य है–

क) कौथुम शाखा – यह सामवेद की सर्वाधिक लोकप्रिय शाखा है। इसकी ताण्ड्य नामक शाखा भी उपलब्ध है। 25 काण्डों में निबद्ध ताण्ड्यब्राह्मण इसी शाखा का है। छान्दोग्योपनिषद् भी इसी शाखा से सम्बद्ध है। यह शाखा गुजरात के ब्राह्मणों विशेषतः नागरब्राह्मणों में प्रचलित है।

ख) राणायनीय शाखा – यह शाखा कौथुमशाखा से अभिन्न है। दोनों शाखायें मन्त्रगणना की दृष्टि से एक ही है। केवल कुछ स्थलों पर उच्चारण सम्बन्धी भेद दृष्टिगत होता है।

ग) जैमिनीय शाखा – सामवेद की यह शाखा समग्र रूप में (संहिता, ब्राह्मण, श्रौत तथा गृह्यसूत्रों सहित) उपलब्ध होती है। इसके मन्त्रों की संख्या 1687 है जो कि कौथुम शाखा से 182 मन्त्र कम है जबकि सामगान की दृष्टि से यह संख्या कौथुम शाखा से सहस्राधिक है। जैमिनी तथा कौथुम शाखायें पाठ की दृष्टि से अधिक भिन्न नहीं हैं, किन्तु उनकी गान पद्धति सर्वथा भिन्न है। तवलकार शाखा इसी की अवान्तर शाखा है, जिससे केनोपनिषद् का सम्बन्ध है। यह शाखा नागरी लिपि में लाहौर से प्रकाशित है।

7) सामगानपद्धति – 'साम' रूढ शब्द है जिसका अर्थ है गान या गीति। जैसा कि जैमिनी का वचन है–**गीतिषु समाख्या।** 'साम' गानसामान्य का नाम है तथा रथन्तर बृहत् आदि गानविशेष है। ये साम गायर्त्र्यादि सभी छन्दों में गाये जाते हैं। किस ऋचा पर कौन से तथा कितने साम होंगे? इनका निश्चय वैदिकों की परम्परा से होता आया है।अतः प्रत्येक मन्त्र का साम नियत है।

गान के चार प्रकारों (ग्रामगेयगान, आरण्यकगान, ऊह तथा ऊह्यगान) में से ग्रामगेय गान पूर्वार्चिक के प्रथम पाँच अध्यायों के मन्त्रों पर, अरण्यगान आरण्यकपर्व में निर्दिष्ट मन्त्रों पर तथा ऊह और ऊह्यगान उत्तरार्चिक में उल्लिखित मन्त्रों पर मुख्यतः होता है। इनमें ग्रामगेय गान में प्रयुक्त स्वर रागादि का आश्रय लेकर ऊहगान का निर्माण होता है, जो कि समाज में गेय होते हैं जबकि अरण्यगान के स्वर रागादि के आधार पर ऊह्यगान निर्मित होता है, जो कि रहस्यात्मक होने के कारण अरण्य के पवित्र वातावरण में ही गेय हैं।

नारदीय शिक्षा के अनुसार साम के स्वरमण्डल में सम्मिलित है–7 स्वर, 3 ग्राम, 21 मूर्च्छनायें तथा 49 तानें।

सामगान के स्वर – साम का अनुप्राणक तत्त्व स्वर हैं। अतः सस्वर ही सामगान विहित है–**'स्वरेण सम्पाद्य उद्गायते'** (जै.ब्रा. 1/112)। सामान्यतः वैदिक संहिताओं में उच्चारण की त्रैस्वर्यपद्धति (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) का अनुसरण किया जाता है किन्तु सामसंहिता सप्त स्वरों पर आश्रित है। सामवेद के सप्तस्वरों की तुलना वेणुस्वर से इस प्रकार है–

	साम	वेणु
1.	प्रथम	मध्यम (म)
2.	द्वितीय	गान्धार (ग)
3.	तृतीय	ऋषभ (रे)
4.	चतुर्थ	षड्ज (नि)

5.	पञ्चम	निषाद (नि)
6.	षष्ठ	धैवत (ध)
7.	सप्तम	पञ्चम (प)

सामगानों में ये ही 7 तक के अंक उनके स्वरों के स्वरूप को सूचित करने के लिये लिखे जाते हैं। सामविधान ब्राह्मण में प्रथम बार साम के सप्त स्वरों का निर्देश प्राप्त होता है– क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार्य। उव्वट ने इन क्रुष्टादिस्वरों को 'सामस्वर' तथा षड्जादि स्वरों को 'गान्धर्व स्वर' कहा है। याज्ञवल्क्य का मत है कि साम के इन सप्त स्वरों में से निषाद तथा गान्धार वाले स्वरों का उदात्त स्वर में, ऋषभ धैवत स्वरों का अनुदात्त में तथा शेष (षड्ज, मध्यम और पञ्चम) का स्वरित स्वर में अन्तर्भाव हो जाता है।

सामगानों पर तो स्वरों को सूचित करने के लिये 1-7 तक के अंकों को चिह्नित किया जाता है किन्तु सामयोनि ऋचाओं के ऊपर दिये गये अंकों की व्यवस्था दूसरे प्रकार की होती है।

सामविकार – सामयोनि मन्त्रों को सामगानों में ढालने पर अनेक संगीतानुकूल शाब्दिक परिवर्तन किये जाते हैं। इन्हें 'सामविकार' कहते हैं अष्टसामविकार (सामविकार) होते हैं– (1) विकार (2) विश्लेष (3) विकर्षण (4) अभ्यास (5) विराम (6) स्तोभ (7) आगम (8) लोप। ये अष्टविकृतियाँ वस्तुतः सामगान के अलंकरण हैं।

स्तोत्र / स्तोम / विष्टुतियाँ / स्तोभ – सामवेद में स्तोत्र होते हैं–**'प्रणीतमन्त्र साध्या स्तुतिः स्तोत्रम्।'** स्तोम भी स्तुति का ही एक प्रकारान्तर है। स्तोमों का प्रयोग यागों में विहित था। स्तोम संख्या में 9 हैं– (1) त्रिवृत्त (2) पञ्चदश (3) सप्तदश (4) एकविंश (5) त्रिणव (6) त्रयस्त्रिंश (7) चतुर्विंश (8) चतुश्चत्वारिंश (9) अष्टचत्वारिंश। ये स्तोम प्रायः तृच् होते हैं। इन तृचों को तीन पर्याय में गाने का नियम है। प्रत्येक पर्याय में तृचों पर साम के गान की आवृत्ति का नियम है। इस प्रकार तृतीय पर्याय में स्तोम का स्वरूप निष्पन्न हो जाता है। इस आवृत्तिजन्य गान के प्रकार को 'विष्टुति' (विशेष स्तुति) कहते हैं। इन 9 स्तोमों की समग्र 28 विष्टुतियाँ हैं।

गायन में पूर्ति के लिये कभी-कभी निरर्थक पद भी जोड़ दिये जाते हैं, जैसे– औ हौ वा आदि। इन्हें 'स्तोभ' कहते हैं।

सामभक्ति – सामगान की पद्धति अत्यन्त कठिन है। सामगान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है– सामभक्ति। सामगान में प्रत्येक गान को ऋत्विजों (उद्गाता मण्डल) की दृष्टि से अनेक अवयवों में विभक्त कर लिया जाता है। जिनके गायन का उत्तरदायित्व उद्गातृ मण्डल के पृथक्-पृथक् ऋत्विज् पर होता है। उद्गातृ वर्ग के विभिन्न ऋत्विजों द्वारा गान किये जाने वाले गान के अवयवों को ही 'सामभक्ति' कहते हैं।

सामगान की पाँच भक्तियाँ हैं– **'प्रस्तावोद्गीथ प्रतिहारोपद्रवनिधनादि भक्तयः (पञ्चविध सूत्र)'** (1) प्रस्ताव (2) उद्गीथ (3) प्रतिहार (4) उपद्रव (5) निधन। इनमें 'प्रस्ताव' का गान 'प्रस्तोता' ऋत्विज्, उद्गीथ का गान 'उद्गाता', 'प्रतिहार' का प्रतिहर्ता नामक ऋत्विज्, 'उपद्रव' का गान 'उद्गाता' तथा 'निधन' का गान 'प्रस्तोता', 'उद्गाता' तथा 'प्रतिहर्ता' मिलकर करते हैं।

इन पञ्चविध भक्तियों में 'हिंकार' तथा 'ओंकार' को सम्मिलित कर देने पर सप्तविध सामभक्तियाँ कही गयी हैं।

1.4.4 अथर्ववेद संहिता

चतुर्वेदों में सर्वाधिक विलक्षण वेद है– अथर्ववेद संहिता। सायण का कथन है– **'व्याख्याय वेदत्रितयमामुष्मिकफलप्रदम्। ऐहाकामुष्मिकफलं चतुर्थं व्याचिकीर्षति।'** (अथर्ववेद भा. भू.) अर्थात् ऋग्वेदादि तीनों वेद केवल आमुष्मिक फल प्रदान करने वाले हैं क्योंकि इन वेदों के मन्त्रों में स्वर्गलोक की प्राप्ति आदि परलोक सम्बन्धी विषयों का प्रतिपादन किया गया है परन्तु अथर्ववेद ऐहिक तथा आमुष्मिक दोनों प्रकार के फलों की सिद्धि करता है। लोक में जीवन को सुखमय तथा दुःख विरहित बनाने के लिये जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उनकी सिद्धि हेतु विविध अनुष्ठानों का विधान इसी वेद में किया गया है। इस प्रकार यज्ञ के पूर्ण संस्कार के लिये अथर्ववेद नितान्त उपादेय है।

अथर्ववेद की महिमा को अथर्व परिशिष्ट में भी वर्णित किया गया है। तदनुसार– 'जिस राजा के जनपद में अथर्ववेद का ज्ञाता निवास करता है वह राष्ट्र उपद्रव हीन होकर वृद्धि को प्राप्त करता है।'

'अथर्व' शब्द कौटिल्यार्थ हिंसार्थक और गमनार्थक **'थर्व'** धातु से निष्पन्न है। यास्क के अनुसार 'अथर्व' शब्द की निरुक्ति है–**'थर्वतिः = चरति कर्मा तत् प्रतिषेधः अर्थात् थर्वणं = थर्वो गमनं तत् अस्ति एषाम् इति थर्वन्तः। न थर्वन्तः इति अथर्ववन्तः, त एव अथर्वाणः। स्थिरप्रकृतयो हि ते भवन्तीत्यर्थः।'** (निरु. 11/3/23) अर्थात् स्थिरचित्तवृत्ति वाले अहिंसक व्यक्ति ही अथर्व कहलाते हैं।'अथर्व' शब्द का यह निर्वचन अथर्ववेद के आध्यात्मिक पक्ष को अभिव्यक्त करता है। अथर्ववेद में योग के प्रतिपादक अनेक अंश इस अर्थ की पुष्टि करते हैं।

सामान्यतः 'अथर्वा' नामक ऋषि के द्वारा इस वेद के सर्वाधिक मन्त्रों के दृष्ट होने के कारण इस वेद को 'अथर्ववेद' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद के अन्य अभिधान भी हैं– 'अंगिरावेद', 'अथर्वांगिरसवेद', 'क्षत्रवेद' तथा 'ब्रह्मवेद'। इनमें अंगिरा नाम के ऋषि द्वारा अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों के दृष्ट होने अथवा दुष्टविनाशक 'अंगिरा' नामक अग्नि से सम्बद्ध अभिचारिक मन्त्रों से युक्त होने से इस वेद को 'अंगिरावेद' कहते हैं अथवा अथर्वा ऋषि के द्वारा दृष्ट शान्तिपौष्टिक भैषज्य मन्त्रों तथा अंगिरा ऋषि द्वारा दृष्ट अभिचारिक मन्त्रों का संकलन होने से इसे 'अथर्वांगिरसवेद' कहा जाता है। क्षत्रिय कुलोत्पन्न राजाओं से सम्बद्ध विविध राजनैतिक दण्डनीतिविषयक सामग्रियों का संकलन होने से अथर्ववेद का एक नाम 'क्षत्रवेद' भी है इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान का प्रतिपादक होने अथवा ब्रह्मा नामक ऋत्विज् के कर्म का प्रतिपादक होने से इसे 'ब्रह्मवेद' के नाम से भी अभिहित किया गया।

1) **अथर्ववेद का विषय विभाग** – अथर्ववेद 20 काण्डों में विभक्त है। इसमें 731 सूक्त तथा 5987 मन्त्रों का संकलन है। इन मन्त्रों का संकलन एक विशिष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया गया है। आरम्भिक सात काण्डों में छोटे-छोटे सूक्त हैं। प्रथम काण्ड से पञ्चम काण्ड तक प्रतिसूक्त में नियम से क्रमशः 4, 5, 6, 7 तथा 8 मन्त्र संकलित हैं। षष्ठ काण्ड में 142 सूक्त हैं जिनमें प्रतिसूक्त में न्यूनतम तीन मंत्र हैं। सप्तम काण्ड के 118 सूक्तों में से अधिकतर सूक्तों में एक या दो ही मन्त्र हैं। अष्टम से द्वादश काण्डों में बड़े-बड़े सूक्त संग्रहीत हैं जो भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बद्ध हैं। द्वादश काण्ड के आरम्भ में पृथिवी सूक्त है जिसके 63 मन्त्रों में अनेक राजनीतिक तथा भौगोलिक सिद्धान्तों का भव्य चित्रण है। त्रयोदश से अष्टादश काण्ड तक विषय की एकता दृष्टिगत होती है। 13वाँ

काण्ड आध्यात्मविषयक है। चौदहवें काण्ड में दो दीर्घ सूक्तों (139 मन्त्रों) में विवाह सम्बन्धी वर्णन है। 15वाँ काण्ड व्रात्यकाण्ड है, जिसमें व्रात्यों के यज्ञ सम्पादन का आध्यात्मिक वर्णन है। 16वें काण्ड में दुःस्वप्न नाशक मन्त्रों (103) का सुन्दर संग्रह है। 17वें काण्ड में एक सूक्त है जिसमें अभ्युदय की कामना की गयी है। 18वाँ काण्ड श्राद्धकाण्ड, 19वें काण्ड में भैषज्य राष्ट्रावृद्धि तथा आध्यात्मिक मन्त्र तथा अन्तिम 20वें काण्ड में विशेषतः सोमयाग विषयक 958 मन्त्र संकलित हैं।

अथर्ववेद का एक पञ्चमांश (1200 मंत्र) ऋग्वेद का निजी अंश है। ये मंत्र ऋग्वेद के प्रथम अष्टम तथा दशम मण्डलों से उद्धृत हैं।

2) **अथर्ववेद के ऋषि** – गोपथ ब्राह्मण के अनुसार अथर्वा ऋषि ने बीस ऋषियों के द्वारा दृष्ट मन्त्रों का संहिता के रूप में संकलन करके प्रवचन किया था। वही संहिता मूलतः अथर्ववेद संहिता है। सायण का मत है जिसमें अथर्वा तथा अंगिरस ऋषियों से उत्पन्न 20 ऋषियों के मन्त्रों का संग्रह है वह अथर्व संहिता है अर्थात् बीस ऋषियों का सम्बन्ध अथर्ववेद से है।

   इसके अतिरिक्त अथर्ववेद संहिता के लगभग 1200 मंत्र साक्षात् ऋग्वेद से उद्धृत हैं। अतः अथर्वा, अंगिरस भृगु आदि ऋषियों के अतिरिक्त भरद्वाज, वशिष्ठ, विश्वामित्र, कण्वादि ऋग्वैदिक ऋषियों तथा उनके वंशज ऋषि भी अथर्ववेद से सम्बद्ध हो जाते हैं।

3) **अथर्ववेद के ऋत्विज्** – अथर्ववेद का ऋत्विज् 'ब्रह्मा' कहलाता था। इसके भी तीन सहायक थे– ब्राह्मणच्छंसी, अग्नीध्र, तथा पोता। इनकी संयुक्त संज्ञा 'ब्रह्ममण्डल' थी। 'ब्रह्मा' ही सम्पूर्ण यज्ञ का अध्यक्ष होता था। तीनों वेदों के ऋत्विग्गणों (होतृगण, अध्वर्युगण, उद्गातृगण) के कार्यों के निरीक्षण का दायित्व इसी (ब्रह्मा) पर होता था। 'ब्रह्मा' चारों वेदों का ज्ञाता होता था। यज्ञ के अध्यक्ष के रूप में यज्ञ की रक्षा का मुख्य दायित्व इसी पर था। अतः यज्ञरक्षासम्बन्धी कर्म शान्तिक-पौष्टिक-भैषज्यादिकर्मों से सम्बन्धित मन्त्रों का संकलन 'ब्रह्मा' नामक ऋत्विज् के कार्यों की सिद्धि के लिये अथर्ववेद में किया गया इसलिये इस वेद का एक नाम 'ब्रह्मवेद' भी है।

4) **अथर्ववेद का वर्ण्य-विषय** – अथर्ववेद की विषय-वस्तु ऋग्वेदादि से नितान्त विलक्षण हैं। प्राचीन मानव के समाज में ऐसी विविध क्रियायें, अनुष्ठान तथा विश्वास थे, जिनका विशद विवेचन अथर्ववेद के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता। शत्रुओं पर विजय प्राप्ति, क्लेशकर दीर्घ रोगों के निवारण, नवजात सन्तति तथा प्रसूता स्त्री को सन्तप्त करने वाले भूत-प्रेतों के विनाश सम्बन्धी विविध अभिचारों के वर्णन की दृष्टि से अथर्ववेद विश्वकोश है। प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से अथर्ववेद में वर्णित विषयों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है– (1) आध्यात्मिक (2) आधिभौतिक (3) आधिदैविक। आध्यात्मप्रकरण में ब्रह्म परमात्मा आश्रमादि का वर्णन आधिभौतिक प्रकरण में राज्य-शासन शर्त्वादि का वर्णन तथा आधिदैविक प्रकरण में विविध देवताओं, यज्ञों तथा कालादि से सम्बद्ध प्रचुर सामग्री विद्यमान है। अथर्ववेद में तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना तथा भैजष्यविद्या का भी प्राचुर्य है। इससे सम्बद्ध कतिपय सूक्त यहाँ द्रष्टव्य हैं–

1) **भैजषज्य सूक्त** – इस सूक्त में बलास-यक्ष्मा-कास-दन्तपीडादि विविध रोगों, सर्पविषादि के लक्षण, विकार तथा इन सबकी औषधियों के विषय में विविध लताओं, गुल्म तथा वनस्पतियों का वर्णन है।

2) **आयुष्य सूक्त** – इसमें आयुवृद्धि (दीर्घायु) हेतु तथा सौ प्रकार की मृत्यु से बचने और विविध रोगों से रक्षा के निमित्त मन्त्रों का संग्रह है। बालकों के मुण्डन, गोदान, उपनयन, विवाहादि मांगलिकावसरों पर दीर्घायु प्राप्ति हेतु इन मन्त्रों का विशेष प्रयोग होता है।

3) **पौष्टिक कर्म** – इसके अन्तर्गत गृहनिर्माण, सीरकर्षण, बीजवपन, अन्नोपादानपुष्टि, विदेश गमन, व्यापारादि से सम्बद्ध विविध आशीर्वादात्मक प्रार्थनायें हैं।

4) **प्रायश्चित्त कर्म** – अथर्ववेद में ज्ञाताज्ञात रूप से धर्मविरुद्धाचरण के प्रायश्चित्त स्वरूप उनसे मुक्ति पाने के लिये विविध विधानों (मन्त्रों) तथा अशुभस्वप्न, अशुभ नक्षत्र में जन्मादि अपशकुनों को दूर करने के निमित्त अनेक उपायों का वर्णन है।

5) **स्त्रीकर्म** – अथर्ववेद में स्त्रीविषयकाभिचार से सम्बद्ध भी अनेक सूक्त उपलब्ध होते हैं। इसमें पुत्रोत्पादन, नवजात शिशु के रक्षण से सम्बद्ध अभिचारों के अतिरिक्त मारण-मोहन-उच्चाटन तथा वशीकरण मन्त्रों का भी बाहुल्य है।

6) **राजकर्म** – अथर्ववेद के अन्तर्गत राजाओं से सम्बद्ध अनेक सूक्त हैं। इनमें शत्रुओं के विनाश हेतु अभिचार, युद्धोपयोगी साधनों तथा राजा के संरक्षण सम्बन्धी विविध मन्त्रों का संकलन है।

7) **ब्राह्मण्यानि** – इसमें परब्रह्म परमात्मा के भव्य स्वरूप तथा कार्य वर्णित हैं। परब्रह्म यहाँ काल के रूप में वर्णित है। इसमें ब्राह्मण के हित में प्रार्थनायें तथा अभिशापों का भी वर्णन है।

8) **भूमिसूक्त** – इस सूक्त में पृथिवी को माता के रूप में कल्पित करते हुए मातृभूमि के प्रति अत्यन्त भावुक हृदयोद्गार का वर्णन किया गया है तथा पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों को उसका पुत्र बताया है– **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'** (अथर्व. 12/1/13)

9) **व्रात्य** – अथर्ववेद की शौनक शाखा के पन्द्रहवें अध्याय को 'व्रात्यकाण्ड' कहा जाता है। 'व्रात्य' का लाक्षणिक अर्थ है– ब्रह्म। अतः इसमें 'ब्रह्म' के स्वरूप तथा उससे उत्पन्न सृष्टि का क्रमिक वर्णन है।

5) **अथर्ववेद की शाखायें** – पातञ्जल महाभाष्य में **'नवधाऽथर्वणो वेदः'** कहकर अथर्ववेद की 9 शाखाओं का निर्देश किया गया है। 'चरणव्यूह', 'प्रपञ्चहृदय' तथा सायणकृत 'अथर्ववेद भाष्य भूमिका' में इसका समर्थन किया गया है। अथर्ववेद की ये 9 शाखायें हैं– पैप्पलाद, स्तौद, मोद, शौनकीया, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श, चारण तथा वैद्य किन्तु सम्प्रति इन 9 शाखाओं में मात्र दो शाखायें ही उपलब्ध हैं– (1) शौनकीया शाखा (2) पैप्पलाद शाखा।

क) **शौनकीया शाखा** — सम्प्रति यह शाखा ही अथर्ववेद की प्रतिनिधि शाखा है। इसमें 20 काण्ड, 736 सूक्त तथा 5987 मन्त्र हैं। इसके प्रवचनकर्ता ऋषि शौनक हैं। इसके अन्तिम काण्ड में अधिकतर मन्त्र ऋग्वेद से लिये गये हैं।

ख) **पैप्पलाद शाखा** — इसके प्रवचनकर्ता महर्षि पिप्लाद हैं। इस शाखा का उल्लेख उपनिषदों, पुराणों तथा महाभारतादि में मिलता है। इसमें भी 20 काण्ड, 923 सूक्त तथा 8000 से कुछ कम मन्त्र हैं। इसके 20वें काण्ड में अधिकांश ऐसे मन्त्र हैं जो अन्यत्र अनुपलब्ध हैं। प्राचीनता तथा महत्ता की दृष्टि से पैप्पलाद संहिता का ऋग्वेद के बाद दूसरा स्थान है। इसकी प्रसिद्धि 'काश्मीरियन अथर्ववेद' के रूप में भी रही है।

6) **अथर्ववेद का वेदत्व** — वेदमन्त्रों के त्रैविध्य (पद्य, गद्य तथा गीति) के आधार पर ऋक्, यजुष् तथा साम संहिता को संयुक्त रूप से वेदत्रयी कहा गया किन्तु वेदमन्त्रों के संकलन तथा कर्म प्रतिपादन की दृष्टि से वैदिक संहितायें चतुर्विध हैं— ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता। इस प्रकार 'वेदत्रयी' के साथ-साथ 'वेदचतुष्टयी' की स्थापना हुई।

वेदांग ज्योतिष के इस वचन **'वेदाहि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः'** (वेदांग ज्यो. 3) के आधार पर वेदों की प्रवृत्ति यज्ञ के लिये हुई है। यज्ञानुष्ठान में यज्ञकर्म के सम्पादन की दृष्टि से मन्त्रों का चातुर्विध्य कल्पित किया गया। यज्ञकर्म में ऋग्वेद का ऋत्विज् 'होता' ऋग्वेद के मन्त्रों से देवताओं का आह्वान करता है। यजुर्वेद का ऋत्विज् 'अध्वर्यु' आवाहित देवताओं को यजुष् मन्त्रों से विधि-विधानपूर्वक आहुति समर्पित करता है। सामवेद का ऋत्विज् 'उद्गाता' उन देवताओं की प्रसन्नता के लिये सस्वर सामगान करता है तथा अथर्ववेद का ऋत्विज् 'ब्रह्मा' यज्ञ में उत्पन्न त्रुटियों को मार्जन हेतु प्रायश्चित्त का विधान तथा यज्ञ की विविध विघ्नों से रक्षा करता है। इस प्रकार ये सभी किसी भी यज्ञानुष्ठान के पूरक हैं इसलिये ऋत्विजों के कर्तव्य-विभाग की दृष्टि से वैदिक मन्त्रों का चार संहिताओं में संकलन किया गया।

अथर्ववेद के चतुर्थ वेद संहिता के रूप में कल्पित करने के मूल में एक कारण यह भी है कि ऋग्वेदादि तीनों वेद आमुष्मिक फल वाले हैं, जबकि अथर्ववेद में ऐहिक तथा आमुष्मिक दोनों प्रकार के मन्त्रों का संकलन है अर्थात् अभिचार प्रायश्चित्त भैषज्यादि से सम्बद्ध जो विषय ऋग्वेद आदि तीनों वेदों में अत्यल्प थे या संकलित नहीं थे। जनसामान्योपयोगी उन-उन विषयों को संकलित करने की दृष्टि से चतुर्थवेद के रूप में 'अथर्ववेद संहिता' को कल्पित किया गया। इस प्रकार 'वेदत्रयी' कहा जाये या 'वेदचतुष्टयी', वेद के सन्दर्भ में दोनों संज्ञायें सार्थक हैं।

1.5 वैदिक संहिताओं के भाष्यकार

वैदिक संहिताओं (ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता) पर अनेक भाष्यकारों ने अपने भाष्यों का प्रणयन किया। इनका संक्षिप्त परिचय द्रष्टव्य है—

1) **ऋग्वेद के भाष्यकार** —

क) **माधवभट्ट** — ये ऋग्वेद संहिता के प्राचीनतम भाष्यकारों में अग्रगण्य है। इनके विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती। इनके द्वारा ऋग्वेद पर रचित भाष्य का

भी कुछ अंश (एक अष्टक ऋक्परिमित) ही उपलब्ध होता है। वेंकटमाधव (12वीं शता.) स्कन्दस्वामी (छठीं शताब्दी) तथा सायण ने इनके भाष्य को अनेकत्र उद्धृत किया है, जिससे इनका समय छठीं शताब्दी से भी पूर्व सिद्ध होता है।

ख) स्कन्दस्वामी – ये ऋग्वेद के ऐसे प्रथम भाष्यकार हैं जिनका सम्पूर्ण भाष्य उपलब्ध है। इनका स्थितिकाल बाणभट्ट के समकालीन 682वि. माना जाता है। शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार हरिस्वामी इनके शिष्य थे। ऋग्वेद पर रचित इनका भाष्य अत्यन्त विशद तथा वैदुष्यपूर्ण है।

ग) नारायण तथा उद्गीथ – इन दोनों भाष्यकारों का समय सप्तम शताब्दी माना जाता है। इन दोनों ने ही ऋग्वेद पर भाष्य करने में स्कन्दस्वामी की सहायता की थी। इनमें नारायण का उल्लेख माधव ने अपने भाष्य में किया है तथा उद्गीथ ने ऋग्वेद के अन्तिम भाग पर भाष्य किया था।

घ) वेंकटमाधव – ये दक्षिणापथ के चोलदेश (आंध्रप्रदेश) के निवासी थे। इन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता पर भाष्य लिखा था। इनके भाष्य का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें केवल पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करके मन्त्र के अर्थ को स्पष्ट किया गया है जिससे अर्थबोध में सुगमता होती है। इनका समय 1200 शताब्दी विक्रम संवत् है।

ङ) धानुष्कयज्वा – ये वैष्णवाचार्य 'त्रिवेदीभाष्यकार' या 'त्रयीनिष्ठवृद्ध' के नाम से भी जाने जाते हैं। जिससे ज्ञात होता है कि इन्होंने तीनो वेदों पर भाष्य रचा था, किन्तु न वे उपलब्ध हैं न ही उनके विषय में कोई सूचना प्राप्त होती है। इनका समय विक्रम संवत् 1300 से पूर्व माना जाता है।

च) आनन्दतीर्थ – 'माधव' नाम से प्रसिद्ध आनन्दतीर्थ के द्वारा ऋग्वेद पर छन्दोबद्ध भाष्य की रचना की गयी थी। यह भाष्य ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के केवल कुछ मन्त्रों पर रचित है। ये 'द्वैतवाद' के प्रवर्तक थे। इनका समय 1255-1335 ई. तक माना जाता है।

छ) आत्मानन्द – चतुर्दश शताब्दी के समकाल इन्होंने ऋग्वेद के 'अस्यवामीय' सूक्त पर अपना भाष्य लिखा था।

ज) सायणाचार्य – वैदिकभाष्यकारों में सायण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्वानों का कथन है– **'वेदानां पुण्यप्रकर्षः एव मूर्तो भूत्वा सायणात्मना प्रकटीभूत' इति।** चारों वेदों पर इनके भाष्यों में सायण के भाष्य को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। सायण विजयनगर के संस्थापक महाराज बुक्का तथा महाराज हरिहर के आमात्य तथा सेनानी थे। सायण ने अपने ज्येष्ठ भ्राता 'माधव' के कहने पर वेदों पर भाष्य की रचना की थी इसीलिये इनके भाष्य को 'माधवीय भाष्य' भी कहा जाता है। इनका समय 14वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

2) यजुर्वेद के भाष्यकार –

यजुर्वेद संहिता पर भाष्य रचने वाले अनेक भाष्यकार हुए। जिन्होंने कृष्ण यजुर्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद पर अपने-अपने भाष्य का प्रणयन किया–

कृष्ण यजुर्वेद के भाष्यकार – कृष्ण यजुर्वेद की केवल तैत्तिरीय संहिता पर भाष्यकारों ने भाष्य का प्रणयन किया इन भाष्यकारों में कुण्डिन, भवस्वामी, गुहदेव तथा

आचार्य क्षुर के द्वारा रचित भाष्य उपलब्ध नहीं होते, इनका संकेत विविध ग्रन्थों से प्राप्त होता है। कृष्ण यजुर्वेद के उपलब्ध भाष्यकारों में अग्रणी हैं–

क) भट्टभास्कर मिश्र – इनका समय विक्रम की एकादश शताब्दी है। इन्होंने कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता पर 'ज्ञानयज्ञ' नामक भाष्य रचा था। इस भाष्य का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें भट्टभास्कर ने लुप्तप्राय निघण्टु के उद्धरणों का संग्रह करके वैदिक मन्त्रों का उद्धरण देते हुए मन्त्रों की आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से वैदुष्य मण्डित प्रामाणिक व्याख्या की है।

ख) सायण – सायण ने सर्वप्रथम कृष्ण यजुर्वेद की इसी शाखा पर अपना भाष्य लिखा था क्योंकि वे मूलतः यजुर्वेद की इसी शाखा के वेदपाठी ब्राह्मण थे।

शुक्ल यजुर्वेद के भाष्यकार –

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन तथा काण्व दोनों संहिताओं पर भाष्य उपलब्ध होता है–

माध्यन्दिन संहिता के भाष्यकार –

क) उव्वट – वज्रट के पुत्र उव्वट गुर्जर प्रदेश के आनन्दपुर के निवासी थे। ये भोजराज के समकालीन थे। अतः इनका समय 11वीं शताब्दी है। इन्होंने अपने नाम से ही शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता पर भाष्य रचा था, जिसे अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है।

ख) महीधर – काशी में उत्पन्न महीधर नागरीय ब्राह्मण थे। इन्हें काशीनरेश का राजाश्रय प्राप्त था। इन्होंने शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता पर 'वेददीप' नामक भाष्य रचा। इनका वैशिष्ट्य यह है कि इन्होंने उव्वटभाष्य निरुक्त, श्रौतसूत्र तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का अवलम्बन करके याज्ञिक क्रिया के विधानों को सुगम बनाया। इनका समय 16वीं शताब्दी का मध्य भाग है।

काण्व संहिता का भाष्यकार –

क) हलायुध – इन्हें बंगनरेश लक्ष्मणसेन का समकालीन (1170-1200ई.) माना जाता है। इन्होंने शुक्ल यजुर्वेद-काण्व संहिता पर 'ब्राह्मणसर्वस्वम्' भाष्य रचा था। इसके अतिरिक्त चार अन्य ग्रन्थों की भी रचना की थी।

ख) सायण – इन्होंने सम्पूर्ण काण्व संहिता पर 'माधवीय' नामक भाष्य रचा था।

ग) अनन्ताचार्य – षोडश शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्पन्न अनन्ताचार्य ने काण्व संहिता के उत्तरार्द्ध पर भाष्य लिखा था। यह भाष्य महीधर से प्रभावित है।

3) सामवेद के भाष्यकार – सामवेद पर चार भाष्यकारों के भाष्य उपलब्ध होते हैं–

क) माधवाचार्य – सामभाष्यकारों में इनका नाम अग्रणी है। इन्होंने सामवेद पर 'विवरण' नामक भाष्य रचा था जो अध्यावधि अप्रकाशित है। इनमें पूर्वार्चिक पर रचित भाष्य का नाम 'छन्दसिकाविवरण' तथा उत्तरार्चिक पर रचित भाष्य का नाम 'उत्तरविवरण' है। इनका समय वि.सं. 657 से पूर्व माना जाता है।

ख) भरतस्वामी – नारायण तथा यज्ञदादेवी के पुत्र भरतस्वामी ने होसलाधीश्वर रामनाथ की छत्रच्छाया में 'श्रीरंगनामक' वैष्णवतीर्थ में सामवेदीय भाष्य का

प्रणयन किया था। यह भाष्य भी अप्रकाशितावस्था में है। इनका समय 13वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

ग) **गुणविष्णु** – ये सामवेदीय भाष्यकारों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनका समय बंगनरेश लक्ष्मणसेन के समकाल (12-13 शताब्दी) माना जाता है। इन्होंने सामवेद के नित्य नैमित्तिक कर्म में प्रयुज्यमान साममन्त्रों की व्याख्या की थी, जिसका प्रचलन मिथिला तथा बंग प्रदेश में अधिक था।

घ) **सायण** – सायण ने गुणविष्णु के सामवेदीय भाष्य को आधार बनाकर सामवेद पर माधवीय भाष्य का प्रणयन किया।

4) **अथर्ववेद के भाष्यकार** – सम्पूर्ण अथर्ववेद पर एकमात्र सायण प्रणीत भाष्य ही उपलब्ध होता है। यह भाष्य भी अधूरा ही प्रकाशित हुआ है।

1.6 सारांश

वैदिक वाङ्मय के चार सोपान हैं– वेद (मन्त्र/संहिता) ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। इनमें विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय 'वेद' है। 'वेद' शब्द का अर्थ है– पवित्र ज्ञान, जिसका प्राचीन ऋषियों ने अपनी तपस्या से मन्त्र रूप में साक्षात्कार किया था। वैदिक वाङ्मय में वेद के स्वरूप के विषय में दो मान्यतायें प्रचलित रहीं– (1) मन्त्र और ब्राह्मण दोनों की संयुक्त संज्ञा 'वेद' है। (2) वेद मन्त्रात्मक (संहितात्मक) हैं किन्तु इनमें से ब्राह्मणों के वैदिक मन्त्रों (संहिता) के व्याख्यानरूप होने से 'वेद' शब्द का प्रयोग प्रधानतः मन्त्र संहिता के लिये ही होता है। वेद अपौरुषेय है किन्तु कतिपय भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों ने इसके काल निर्धारण का भी प्रयास किया है।

वेदमन्त्र आरम्भ में अविभक्त थे। **'मननात् मन्त्रः'** (नि.) जिससे यज्ञ का सम्पादन अथवा देवस्तुति का विधान किया जाता है वे मन्त्र हैं। वेदमन्त्र ऋक् (पद्यात्मक), यजुष् (गद्यात्मक) तथा साम (गानात्मक) रूप होने से त्रिस्वरूपात्मक थे, जिनको 'वेदत्रयी' या 'त्रयी' कहा जाता है अर्थात् वेदमन्त्रों के त्रिस्वरूपात्मक होने से 'वेद' का ही अपर नाम 'त्रयी' भी था। कालान्तर में वेदमन्त्रों की विशालराशि का ऋषियों ने एक सुव्यवस्थित क्रम में संकलन किया, जिसे 'संहिता' कहते हैं। पौराणिक मान्यतानुसार महर्षि कृष्णद्वैपायन ने सर्वप्रथम यज्ञानुष्ठान में नियुक्त चार ऋत्विजों (होता, अध्वर्यु, उद्‌गाता, ब्रह्मा) के सौविध्य की दृष्टि से चार संहिताओं का निर्माण किया– (1) ऋग्वेद संहिता (2) यजुर्वेद संहिता (3) सामवेद संहिता (4) अथर्ववेद संहिता।

ऋचाओं का समूह ही ऋग्वेद है। ऐसे मन्त्र, जिनमें देवताओं की स्तुतियाँ हों, उन्हें ऋचा कहते हैं। ऋग्वेद संहिता में 10 मण्डल, 85 अनुवाक्, 2006 वर्ग है। अष्टकक्रम से इसमें 8 अष्टक, 64 अध्याय तथा 1017 सूक्त है। ऋग्वेद के मण्डलों की व्यवस्था ऋषियों के आधार पर की गयी है। प्रथम, नवम, दशम मण्डलों के दृष्टा अनेक ऋषि हैं किन्तु द्वितीय से अष्टम मण्डल तक क्रमशः गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वशिष्ठ तथा कण्व और उनके वंशज हैं। ऋग्वेद में 33 देवताओं की स्तुतियाँ की गयी हैं। ऋग्वेद की अनेक शाखायें थीं जिनमें प्रमुख पाँच शाखायें थीं– शाकल, वाष्कल, आश्वलायनी, शांखायनी, मण्डूकायनी किन्तु इसकी केवल शाकल शाखा ही उपलब्ध होती है। ऋग्वेद के महत्त्वपूर्ण सूक्तों में नासदीय सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त, पुरुष सूक्त, वागम्भृणी सूक्त, यम सूक्त, दार्शनिक दृष्टि से तथा श्रद्धा सूक्त, संवाद सूक्त

संज्ञान सूक्त और दानस्तुतियाँ लौकिक तथा सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। 'होतृमण्डल' से सम्बद्ध होने के कारण इस वेद को 'होतृवेद' भी कहते हैं।

यजुर्वेद कर्मकाण्ड प्रधान है। यज्ञादि कर्मों के प्रतिपादक गद्यात्मक मन्त्रों को यजुष् कहा जाता है। यजुर्वेद संहिता में इन्हीं मन्त्रों का संग्रह है। यजुर्वेद के दो विभाग हैं– (1) कृष्ण यजुर्वेद (2) शुक्ल यजुर्वेद। कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों का सम्मिश्रण है जबकि शुक्ल यजुर्वेद में मात्र मन्त्र हैं। यजुर्वेद के भी प्रायः वही ऋषि हैं, जो ऋग्वेद के हैं तथापि इसमें याज्ञिकानुष्ठान के निमित्त परमेष्ठ्यादि ऋषि बताये गये हैं। यजुर्वेद संहिता का ऋत्विज् होता तथा उसके सहयोगी है। इनके समूह को होतृमण्डल भी कहते हैं। शाखा की दृष्टि से कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखायें उपलब्ध हैं– (1) तैत्तिरीय (2) मैत्रायणी (3) कठ (4) कपिष्ठल तथा शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखायें हैं– (1) माध्यन्दिन तथा (2) काण्व संहिता।

तृतीय संहिता का नाम सामवेद संहिता है साम का अर्थ है– गान। इसमें ऋक् मन्त्रों पर स्वरसहित सामगानों का संग्रह है। सामवेद संहिता के दो भाग हैं– (1) पूर्वार्चिक (2) उत्तरार्चिक। इनमें क्रमशः 6 तथा 9 प्रपाठक हैं। पूर्वार्चिक में सामयोनि ऋचाओं का संग्रह है तथा उत्तरार्चिक में स्वरांकन सहित सामगान है। सामवेद में ऋग्वेद की ऋचाओं को ही गानरूप में प्रस्तुत किया गया है। अतः ऋग्वेद के ऋषि ही सामवेद के भी मन्त्रदृष्टा ऋषि हैं। गान की दृष्टि से भी ऋषियों का निर्धारण है। सामवेद में दोनों अर्चिकों में प्रतिपाद्य देवताओं गानों, सवन, स्वर, सामवैविध्य की दृष्टि से देवताओं का निर्णय किया गया है। सामवेद की सहस्राधिक शाखायें हैं किन्तु सम्प्रति तीन शाखायें ही उपलब्ध हैं– (1) कौथुमीया (2) राणायनीया (3) जैमिनीया। सामवेद का संकलन 'उद्गाता' तथा उसके सहायक ऋत्विजों के सौकर्य के लिये किया गया था। अतः इसे 'उद्गातृ वेद' भी कहा जाता है।

चतुर्थ वेद संहिता है– अथर्ववेद। इसे अथर्वांगिरसवेद, क्षत्रवेद, अंगिरसवेद तथा ब्रह्मवेद भी कहते हैं। ऋग्वेदादि तीनों वेद जहाँ आमुष्मिक फलप्रदायक है वहीं अथर्ववेद ऐहिक तथा आमुष्मिक दोनों फलों की सिद्धि करता हैं। इसमें शान्तिक-पौष्टिक-भैषज्य-आभिचारिक विषयों का प्रतिपादन किया गया है। पतंजलि ने अथर्ववेद की नौ शाखाओं का उल्लेख किया है किन्तु सम्प्रति अथर्ववेद की दो शाखा ही उपलब्ध हैं– (1) शौनकीया (2) पैप्पलाद। शौनकीया शाखा में 20 काण्ड, 736 सूक्त तथा 5987 मंत्र हैं। पैप्पलाद शाखा में 20 काण्ड, 923 सूक्त तथा 8000 से कुछ कम मन्त्र हैं।

वेद गद्यपद्यगान की दृष्टि से त्रिस्वरूपत्मक होने से 'वेदत्रयी' कहलाते हैं किन्तु यज्ञानुष्ठान हेतु चार ऋत्विजों की दृष्टि चार अर्थात् वेदचतुष्टयी हैं।

वैदिक भाष्यकारों में ऋग्वेद के भाष्यकार के रूप में माधवभट्ट, स्कन्दस्वामी, नारायण, उद्गीथ, वेंकटमाधव, धानुष्कयज्वा, आनन्दतीर्थ, आत्मानन्द तथा सायण, यजुर्वेद के भाष्यकारों में भट्टभास्कर, महीधर, हलायुध, अनन्ताचार्य, सायण, सामवेद के भाष्यकारों में माधवाचार्य, भरतस्वामी, गुणविष्णु, सायण तथा अथर्ववेद के भाष्यकार के रूप में सायण उल्लेखनीय है।

1.7 शब्दावली

मन्त्र – गुप्तकथन या शब्दात्मकाभिव्यक्ति

संहिता	–	विशेषक्रम में मन्त्रों का सुव्यवस्थित संग्रह
त्रयी	–	वेदमंत्रों का पद्यात्मक गद्यात्मक तथा गानात्मक स्वरूप
ऋषि	–	मन्त्रदृष्टा
ऋत्विज्	–	श्रौतयज्ञ के विधान के ज्ञाता
सोमयाग	–	सोमनामक लताविशेष से किया जाने वाला याग विशेष
शान्तिक	–	शान्ति हेतु क्रियमाण कर्म
पौष्टिक	–	पुष्टि हेतु क्रियमाण कर्म
भैषज्य	–	जीवनप्रदायिनी शक्ति
सामभक्ति	–	साम का विभाग
अभिचार	–	मन्त्र प्रयोग से रोगकरण तथा रोगहरण

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) निरुक्तम् – यास्काचार्य, मेहरचन्द लक्ष्मणदास प्रकाशन, संस्करण–1982

2) ऋग्भाष्यभूमिका – जगन्नाथ पाठक, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी –1991

3) ऋक् संहिता – शिवनाथ आहिताग्नि, नाग प्रकाशन, दिल्ली द्वि. सं. 1991

4) संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास– प्रथम खण्ड (वेद), बलदेव उपाध्याय, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।

5) संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

6) वैदिकवाङ्मयस्येतिहासः, आचार्यजगदीशचन्द्रमिश्रः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

7) वैदिक साहित्य– बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान वाराणसी।

1.9 अभ्यास प्रश्न

1) काठक संहिता का परिचय दीजिए।
2) वेद के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
3) ऋग्वेद संहिता का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4) ऋग्वेद के ऋषिमण्डल तथा देवताओं पर प्रकाश डालिए।
5) यजुर्वेद का संक्षिप्त परिचय देते हुए शुक्ल यजुर्वेद की शाखाओं का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
6) यजुर्वेद के भाष्यकारों का परिचय दीजिए।
7) सामवेद की विषय-वस्तु स्पष्ट कीजिए।
8) सामगान पर एक निबन्ध लिखिए।
9) अथर्ववेद संहिता का संक्षिप्त परिचय देते हुए प्रतिपाद्य वस्तु स्पष्ट कीजिए।